

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

अति महत्वपूर्ण प्रश्न

आर. सी. स्प्रोल

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है ?

अति महत्वपूर्ण प्रश्न पुस्तिकाएं निश्चित मसीही सच्चाइयों का एक सहज परिचय प्रदान करती हैं। इस विस्तृत संग्रह में निम्न शीर्षक सम्मिलित हैं:

यीशु कौन है?

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

क्या प्रार्थना बातों को बदल सकती है?

क्या मैं परमेश्वर की इच्छा को जान सकता हूँ?

मुझे इस संसार में कैसे जीना चाहिए?

नया जन्म होने का अर्थ क्या है?

क्या मुझे निश्चय हो सकता है कि मैं बचा हुआ हूँ?

विश्वास क्या है?

मैं अपने दोष-बोध के साथ क्या कर सकता हूँ?

त्रिएकता क्या है?

शेष श्रृंखला को देखने के लिए,

कृपया जाएं: Ligonier.org/posts/rc-sprouls-crucial-questions-ebooks-now-free

क्या
प्रार्थना
बातों को
बदलती है?

आर. सी. स्प्रोल

Does Prayer Change Things?

© 2009 by R.C. Sproul

Previously published as Effective Prayer (1984) and as part of Following Christ (1991) by Tyndale House Publishers, and as Does Prayer Change Things? by Ligonier Ministries (1999).

Published by Reformation Trust Publishing

a division of Ligonier Ministries

421 Ligonier Court, Sanford, FL 32771

Ligonier.org ReformationTrust.com

RR Donnelley

0001018

First edition, thirteenth printing

ISBN 978-1-64289-038-9 (Paperback)

ISBN 978-1-64289-066-2 (ePub)

ISBN 978-1-64289-094-5 (Kindle)

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means—electronic, mechanical, photocopy, recording, or otherwise—without the prior written permission of the publisher, Reformation Trust Publishing. The only exception is brief quotations in published reviews.

Cover design: Ligonier Creative

Interior typeset: Katherine Lloyd, The DESK

First Hindi Translation 2021

This Hindi edition is issued in arrangement with Ligonier Ministries, United States of America.

For sales and distribution in India, and not for export therefrom.

Translated and Published by 'For The Truth Press Private Limited'

www.forthetruth.in

प्रथम हिन्दी अनुवाद 2021

यह हिन्दी संस्करण लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़, संयुक्त अमेरिका,
के प्रायोजन से प्रकाशित किया गया है।

‘फॉर द ट्रूथ प्रेस प्राइवेट लिमिटेड’ द्वारा अनुवादित और प्रकाशित।

विषय सूची

पहला	प्रार्थना का स्थान	1
दूसरा	प्रार्थना का अभिप्राय.....	7
तीसरा	प्रार्थना का नमूना.....	21
चौथा	प्रार्थना का अभ्यास.....	47
पाँचवां	प्रार्थना का निषेदाज्ञाएं.....	73
छठवां	प्रार्थना का सामर्थ्य.....	81

अध्याय एक

प्रार्थना का स्थान

मसीही जीवन का लक्ष्य क्या है? उसका लक्ष्य ईश्वरभक्ति है, जो मसीह के प्रति आज्ञापालन से उत्पन्न होती है। आज्ञाकारिता मसीही अनुभव के धन के कोष को खोल देती है। प्रार्थना आज्ञापालन को प्रोत्साहित एवं पोषण प्रदान करती है, अर्थात् आज्ञाकारिता की इच्छा करने के लिए हमारे हृदय को सही “मानसिक स्थिति” में लाती है।

निस्सन्देह, ज्ञान भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके बिना हम नहीं जान सकते कि परमेश्वर क्या चाहता है। फिर भी, ज्ञान और सत्य अमूर्त रह जाते हैं जब तक कि हम परमेश्वर के साथ प्रार्थना में संगति न करें। पवित्र आत्मा हमें परमेश्वर के वचन को सिखाता, प्रेरित करता और ज्योतिर्मय करता है। वह

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

परमेश्वर के वचन की मध्यस्थता करता है और प्रार्थना में पिता को प्रतिउत्तर देने में हमारी सहायता करता है।

सरल शब्दों में कहें, तो मसीही के जीवन में प्रार्थना का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति प्रार्थना करे और वह मसीही न हो, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति मसीही हो और वह प्रार्थना न करे। रोमियों 8:15 हमें बताता है कि जिस आत्मिक लेपालकपन ने हमें परमेश्वर की सन्तान बना दिया है वह हमें इन शाब्दिक अभिव्यक्ति को पुकारने के लिए प्रेरित करता है “हे अब्बा! हे पिता!” मसीही जीवन के लिए प्रार्थना ठीक वैसे ही है, जैसे जीवन के लिए श्वास, तौभी मसीही जीवन का कोई भी कर्तव्य इतना अधिक उपेक्षित नहीं होता है।

प्रार्थना, कम से कम व्यक्तिगत प्रार्थना, एक झूठी मनसा से करना कठिन है। कोई व्यक्ति झूठी मनसा से प्रचार कर सकता है, जैसा कि झूठे प्रचारक करते हैं। कोई व्यक्ति झूठी मनसा से मसीही गतिविधियों में सम्मिलित हो सकता है। धर्म के कई बाहरी कार्य झूठी मनसा से किए जा सकते हैं। परन्तु, इसकी सम्भावना बहुत कम है कि कोई व्यक्ति अनुचित मनसा से परमेश्वर के साथ संगति करे।

प्रार्थना करने के लिए हमें आमंत्रित किया गया है, और यहाँ तक कि आज्ञा भी दी गई है। प्रार्थना दोनों एक सौभाग्य और कर्तव्य भी है, और कोई भी कर्तव्य श्रमसाध्य बन सकता है। प्रार्थना में भी मसीही उन्नति के अन्य साधनों के नाई, परिश्रम की आवश्यकता होती है। एक प्रकार से, प्रार्थना करना हमारे लिए अस्वभाविक है। यद्यपि हम परमेश्वर के साथ संगति करने और सम्बन्ध रखने के लिए बनाए गए थे, परन्तु पाप के प्रभाव ने हम में से अधिकांश लोगों को प्रार्थना जैसी महत्वपूर्ण बात के प्रति आलसी और उदासीन बना दिया है।

पुनरुज्जीवन परमेश्वर के साथ संगति के लिए एक नई इच्छा को उत्पन्न करता है, परन्तु पाप आत्मा का विरोध करता है।

हम इस सत्य से सान्त्वना पा सकते हैं कि परमेश्वर हमारे हृदयों को जानता है और हमारे होंठों से निकली हुए विनतियों के साथ ही साथ, अव्यक्त विनतियों को भी सुनता है। जब भी हम अपने मनों की गहन भावनाओं और भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं या जब हम पूर्ण रूप से अस्पष्ट होते हैं कि हमें क्या प्रार्थना करनी चाहिए, तो पवित्र आत्मा हमारे लिए मध्यस्थता करता है। रोमियों 8:26-27 कहता है: “इसी रीति से आत्मा भी हमारी दुर्बलता में सहायता करता है; क्योंकि हम नहीं जानते कि हमें प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए, परन्तु आत्मा स्वयं भी ऐसी आहें भर भर कर जो अवर्णनीय हैं हमारे लिए विनती करता है, और हृदयों को जाँचने वाला जानता है कि आत्मा की मनसा क्या है, क्योंकि वह पवित्र लोगों के लिए परमेश्वर की इच्छानुसार विनती करता है।” जब हम किसी परिस्थिति में यह नहीं जानते हैं कि कैसे प्रार्थना करनी चाहिए और क्या प्रार्थना करनी चाहिए, तो पवित्र आत्मा हमारी सहायता करता है। इस खण्ड से हमारे पास यह विश्वास करने का आधार है कि यदि हम त्रुटि पूर्वक प्रार्थना करते हैं, तो पवित्र आत्मा हमारी प्रार्थनाओं को पिता के सम्मुख ले जाने से पहले उन त्रुटियों को ठीक करता है, क्योंकि पद 27 हमें यह बताता है, कि वह “पवित्र लोगों के लिए परमेश्वर की इच्छानुसार विनती करता है।”

पवित्रता का रहस्य तो प्रार्थना है —यदि पवित्रता में, वास्तव में कुछ भी रहस्यमय बात है तो। यदि हम ध्यान से कलीसिया के महान संतों के जीवनो को जाँचें, तो हम पाते हैं कि वे प्रार्थना के महान लोग थे। जॉन वेस्ली ने एक बार यह टिप्पणी की थी कि वह उन सेवकों को उतना महत्व नहीं देते थे जो

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

प्रार्थना में प्रतिदिन कम से कम चार घण्टे व्यतीत नहीं किया करते थे। लूथर ने कहा कि वैसे तो वह प्रत्येक दिन नियमित रीति से एक घण्टा प्रार्थना करते हैं, परन्तु जब उनका दिन अत्यन्त व्यस्त हो जाता है, तो उस दिन वह दो घण्टा प्रार्थना करते हैं।

प्रार्थना की उपेक्षा करना मसीही जीवन में विकासहीनता का एक प्रमुख कारण है। लूका 22:39-62 में पतरस के उदाहरण पर विचार कीजिए। यीशु जैतून के पर्वत पर प्रार्थना करने के लिए गया, जैसे कि उसकी रीति थी, और उसने अपने चेलों से कहा, “प्रार्थना करो कि तुम परीक्षा में न पड़ो।” परन्तु इसके विपरीत चले सो गए। पतरस ने जो अगला कार्य किया वह था एक तलवार से रोमी सेना का सामना करने का प्रयत्न; तदुपश्चात् उसने खीष्ट का इनकार किया। पतरस ने प्रार्थना नहीं की, और इसके परिणामस्वरूप वह परीक्षा में पड़ गया। पतरस के विषय में जो सत्य है वह हम सब के लिए भी सत्य है: इससे पहले कि हम सार्वजनिक रीति से पाप में गिरें हम व्यक्तिगत रीति से पाप में गिरते हैं।

क्या प्रार्थना के लिए कोई उचित और अनुचित समय होता है? यशायाह 50:4 बताता है कि परमेश्वर प्रतिदिन भोर के समय प्रार्थना करने की इच्छा देता है। परन्तु बाइबल के अन्य खण्ड दिन के प्रत्येक घण्टों में प्रार्थना करने की बात करते हैं। दिन का कोई भी भाग अन्य से अधिक पवित्र ठहरा कर पृथक नहीं किया गया है। यीशु ने प्रातःकाल, दिन के समय और कभी-कभी रात भर प्रार्थना की। यह इस बात का प्रमाण है कि उसने प्रार्थना के लिए एक समय को पृथक रखा था; फिर भी, पिता के साथ यीशु के सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, हम जानते हैं कि उनके बीच की संगति कभी रुकी नहीं थी।

प्रार्थना का स्थान

1 थिस्सलुनीकियों 5:17 हमें निरन्तर प्रार्थना करने के लिए आज्ञा देता है। इसका यह अर्थ है कि हमें निरन्तर अपने पिता के साथ संगति करते रहना चाहिए।

तो फिर, प्रार्थना, मसीही के जीवन में केन्द्रीय और महत्वपूर्ण है। आइए हम इस महत्वपूर्ण परन्तु उपेक्षित और त्रुटिपूर्ण रीति से समझे गए मसीही अनुशासन को और ध्यान से देखें।

अध्याय दो

प्रार्थना का उद्देश्य

परमेश्वर की दृष्टि से कुछ भी छिपता नहीं है; कुछ भी उसकी सामर्थ्य की सीमाओं के परे नहीं है। परमेश्वर सब वस्तुओं पर अधिकार रखता है। यदि मैंने एक क्षण के लिए भी यह सोचा हो कि संसार में कोई एक अकेला अणु भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर के नियंत्रण और क्षेत्र के बाहर जा रहा है, तो मैं आज रात सो नहीं पाऊंगा। भविष्य के विषय में मेरा भरोसा उस परमेश्वर के ऊपर मेरे भरोसे पर टिका हुआ है जो इतिहास को नियंत्रित करता है। परन्तु परमेश्वर कैसे उस नियंत्रण को प्रयोग में लाता है तथा अधिकार को प्रकट करता है? परमेश्वर कैसे उन बातों को पूर्ण करता है जिन्हें वह सम्प्रभुता से राजाज्ञा देता है?

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

ऑगस्टिन ने कहा है कि इस संसार में परमेश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता है, और एक निश्चित अर्थ में, जो कुछ भी होता है उसे परमेश्वर ने ठहराया है। ऑगस्टिन मनुष्यों को उनके कार्यकलापों के उत्तरदायित्व से विमुक्त करने का प्रयत्न नहीं कर रहे थे, परन्तु उनकी शिक्षा एक प्रश्न को उठाती है: यदि परमेश्वर मनुष्यों के कार्यों और विचारों पर सम्प्रभु है, तो प्रार्थना करनी ही क्यों है? एक गौण चिन्ता इस प्रश्न के चारों ओर घूमती रहती है कि, “क्या प्रार्थना वास्तव में कुछ बदलता भी है?”

मैं पहले प्रश्न का उत्तर यह कहते हुए देना चाहता हूँ कि सम्प्रभु परमेश्वर अपने पवित्र वचन के द्वारा आज्ञा देता है कि हम प्रार्थना करें। एक मसीही के लिए प्रार्थना वैकल्पिक नहीं है; यह अपेक्षित है।

हम यह पूछ सकते हैं, कि “फिर क्या होगा यदि इससे कुछ भी न हो?” परन्तु यह तो विषय नहीं है। चाहे प्रार्थना कुछ भी भला करती हो या न करती हो, यदि परमेश्वर हमें प्रार्थना करने की आज्ञा देता है, तो हमें अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए। यह एक पर्याप्त कारण है कि संसार का प्रभु परमेश्वर, सृष्टिकर्ता और सभी वस्तुओं को संभालने वाला, इसकी आज्ञा देता है। फिर भी, वह न केवल हमें प्रार्थना करने की आज्ञा देता है, परन्तु हमें अपने निवेदनों को व्यक्त करने के लिए आमंत्रित भी करता है। याकूब कहता है, हमारे पास नहीं है क्योंकि हमने माँगा नहीं है (याकूब 4:2)। वह हमें यह भी बताता है कि एक धर्मी व्यक्ति की प्रार्थना से बहुत कुछ होता है (याकूब 5:16)। बार बार बाइबल कहती है कि प्रार्थना एक प्रभावकारी साधन है। यह उपयोगी है; और यह कार्य भी करता है।

जॉन केल्विन, *मसीही धर्म के सिद्धान्तों* (द इन्स्टिट्यूट्स ऑफ द क्रिश्चियन रिलिजन) में, प्रार्थना के सम्बन्ध में कुछ गहन टिप्पणियों को प्रस्तुत करते हैं:

नहीं जानता कि, दोनों हम किस विषय में चिन्तित हैं और हमारे लिए क्या लाभकारक है, तो इसलिए यह एक अर्थ में अनावश्यक प्रतीत हो सकता है कि उसे हमारे प्रार्थनाओं द्वारा उत्तेजित किया जाना चाहिए—जैसे कि वह ऊँघते हुए झपकी ले रहा था या फिर सो भी रहा था जब तक कि उसे हमारी वाणी से जगाया नहीं गया? परन्तु वे जो इस प्रकार से सोचते हैं, वे यह नहीं समझते हैं कि प्रभु ने किस उद्देश्य से अपने लोगों को प्रार्थना करने के लिए निर्देश दिया था, उसने तो इसे स्वयं के लिए नहीं परन्तु हमारे लिए ठहराया है। अब वह इच्छा तो करता है—जैसा कि उचित भी है—कि जो उसको देय है यह स्वीकार करते हुए उसे लौटाया जाए, कि वह सब कुछ जिसकी अभिलाषा मनुष्य करते हैं और अपने स्वयं के लाभ के लिए अनुकूल बनाते हैं वह उसकी ओर से आता है, और प्रार्थनाओं द्वारा इसकी पुष्टि होती है। परन्तु इस बलिदान का लाभ भी, जिससे उसकी आराधना होती है, हमारे पास ही लौट कर आता है। इसी प्रकार से, पवित्र सन्तों ने, जितना अधिक आत्मविश्वास से उन्होंने आपस में और दूसरों के मध्य में परमेश्वर के अनुग्रह की प्रशंसा की, उतना ही अधिक वे प्रार्थना करने के लिए उत्सुक हुए . . .

फिर भी हमारे लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम उसे पुकारें: पहला, कि उसे सदैव खोजने, प्रेम करने, और उसकी सेवा करने के लिए हमारा हृदय उत्साही और दहकती हुई अभिलाषा से प्रज्वलित हो जाए, जब तक कि हम इसके अभ्यस्त नहीं हो जाते हैं कि हर आवश्यकता में उसकी ओर

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

भागें मानो जैसे कि एक पवित्र लंगर के पास। दूसरा, कि हमारे हृदय में ऐसी कोई भी इच्छा और कोई अभिलाषा कभी भी प्रवेश न करे जिसके लिए हमें उसे साक्षी बनाने में लज्जा आए, जब हम अपनी सारी इच्छाओं को उसके सम्मुख रखना, और यहाँ तक कि अपने सम्पूर्ण हृदय को भी उण्डेलना सीखते हैं। तीसरा, यह कि हम हृदय की सच्ची कृतज्ञता और धन्यवाद के साथ उसके उपकारों को स्वीकार करने के लिए तैयार रहें, उपकार जिन्हें हमारी प्रार्थना हमें स्मरण दिलाती है कि यह उसके हाथ से प्राप्त होते हैं। (केल्विन, द इन्स्टिट्यूट ऑफ द क्रिश्चियन रिलिजन, अनूदित फोर्ड लुईस बैटल, सम्पादक जॉन टी. मैकनील [लुईविल: वेस्टमिंस्टर जॉन नॉक्स, 1960], पुस्तक 3, अध्याय 20, भाग 3.)

प्रार्थना, मसीही जीवन में शेष सब बातों के समान, इसी क्रम में परमेश्वर की महिमा और हमारे लाभ के लिए है। वह सब कुछ जो परमेश्वर करता है, वह सब जिसकी परमेश्वर अनुमति देता और ठहराता है, वह उस सर्वोच्च अर्थ में अपनी महिमा के लिए करता है। यह भी सत्य है कि जब परमेश्वर अपनी महिमा को सर्वोच्चता से ढूँढता है, तो जब परमेश्वर की महिमा होती है तब मनुष्य को लाभ होता है। हम परमेश्वर की महिमा करने के लिए प्रार्थना करते हैं, परन्तु हम इसलिए भी प्रार्थना करते हैं कि उसके हाथों से प्रार्थना के लाभों को प्राप्त करें। प्रार्थना हमारे लाभ के लिए है, इस तथ्य के प्रकाश में भी कि परमेश्वर अन्त को आदि से ही जानता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हम अपने सम्पूर्ण सीमित अस्तित्व को उसकी असीमित उपस्थिति की महिमा में लाएं।

परमेश्वर के साथ संवाद

धर्मसुधार¹ (रिफॉर्मेशन-Reformation) के महान मूल-विषयों में से एक विचार यह था कि सम्पूर्ण जीवन को परमेश्वर के अधिकार के अधीन, परमेश्वर की महिमा के लिए, परमेश्वर की उपस्थिति में जीना चाहिए। प्रार्थना केवल स्वयं से ऊँचे स्वर से बात करना, या मात्र एक उपचारात्मक आत्म-विश्लेषण का अभ्यास करना, या एक धार्मिक पाठ को दोहराना नहीं है। प्रार्थना स्वयं व्यक्तिगत परमेश्वर के साथ संवाद करना है। वहाँ, प्रार्थना करने के कार्य में और उस गतिशील प्रक्रिया में, मैं अपने सम्पूर्ण जीवन को उसकी दृष्टि के अधीन लाता हूँ। हाँ, वह जानता है कि मेरे मन में क्या है, परन्तु फिर भी मेरे मन में क्या है उसे सुस्पष्ट करने का मेरे पास विशेषाधिकार है। वह कहता है: “आओ। मुझसे बात करो। अपनी विनितियों को मुझे बताओ।” तो इसलिए हम आते हैं कि उसे जानें और उसके द्वारा जाने जाएं।

इस प्रश्न में कुछ तो त्रुटिपूर्ण है, “यदि परमेश्वर सब कुछ जानता है, तो प्रार्थना क्यों करें?” यह प्रश्न मान के चलता है कि प्रार्थना एक-आयामी है और इसे केवल निवेदन या मध्यस्थता के रूप में परिभाषित किया गया है। इसके विपरीत, प्रार्थना बहुआयामी है। परमेश्वर की सम्प्रभुता आराधना की प्रार्थना पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं डालती है। परमेश्वर का पूर्वज्ञान या पूर्वनिश्चित योजना प्रशंसा की प्रार्थना को नहीं नकारती है। इसे तो केवल एक ही कार्य करना चाहिए, अर्थात् परमेश्वर जो है उसके प्रति हमारी आराधना को व्यक्त करने के लिए हमें और बड़ा कारण प्रदान करना। यदि परमेश्वर मेरे कहने से पहले ही जानता है कि मैं क्या कहने वाला हूँ, तो उसका ज्ञान, मेरी प्रार्थना को सीमित करने के स्थान पर, मेरी प्रशंसा की सुन्दरता में वृद्धि करता है।

¹ सोलहवीं शताब्दी का वह आन्दोलन जिसमें रोमन कैथोलिक चर्च की कुप्रथाओं का विरोध किया गया तथा बाइबल की शिक्षाओं को महत्व दिया गया। इसके फलस्वरूप प्रोटेस्टेन्ट तथा रिफॉर्मड् कलीसियाओं की स्थापना हुई।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

मैं और मेरी पत्नी एक दूसरे के इतना समीप है जितना कि दो लोग हो सकते हैं। प्रायः मैं उसके कहने से पहले ही जान जाता हूँ कि वह क्या कहने वाली है। इसका विपरीत भी सत्य है। परन्तु मैं फिर भी उससे यह सुनना पसन्द करता हूँ कि उसके मन में क्या है। यदि मनुष्य के साथ ऐसा है, तो फिर परमेश्वर के विषय में यह कितना अधिक सत्य होगा? हमारे पास अपने अंतरतम विचारों को परमेश्वर के साथ साझा करने का एक अतुल्यनीय विशेषाधिकार है। निस्सन्देह, हम केवल स्वयं के प्रार्थना स्थल में प्रवेश कर सकते हैं, कि परमेश्वर हमारे मन को पढ़े, और उसे प्रार्थना कह सकते हैं। परन्तु वह सहभागिता नहीं है और संचार तो निश्चय ही नहीं है।

हम मुख्य रूप से वाक् शक्ति के द्वारा संचार करने वाले प्राणी हैं। बोली जाने वाली प्रार्थना स्पष्ट रूप से वाक् शक्ति का एक प्रकार है, हमारे लिए परमेश्वर के साथ संगति करने और संचार करने का एक मार्ग है। एक निश्चित अर्थ है जिसमें परमेश्वर की सम्प्रभुता को प्रार्थना के प्रति हमारे मनोवृत्ति को प्रभावित करना चाहिए, कम से कम उपासना के सम्बन्ध में तो अवश्य ही। कम से कम, परमेश्वर की सम्प्रभुता के विषय में हमारी समझ को अवश्य ही हमें धन्यवाद के साथ प्रार्थना पूर्ण जीवन के लिए उत्तेजित करना चाहिए। इस प्रकार के ज्ञान के कारण, हमें देखना चाहिए कि प्रत्येक लाभ, प्रत्येक भला और उत्तम वरदान, उसके अनुग्रह की बहुतायत की अभिव्यक्ति है। जितना अधिक हम परमेश्वर की सम्प्रभुता को समझते हैं, उतनी ही हमारी प्रार्थनाएं धन्यवाद से भरी होंगी।

परमेश्वर की सम्प्रभुता किस प्रकार से संताप की प्रार्थना, तथा पाप-अंगीकार की प्रार्थना को *नकारात्मक* रीति से प्रभावित कर सकती है? सम्भवतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हमारा पाप अंततः परमेश्वर का उत्तरदायित्व है

प्रार्थना का उद्देश्य

और हमारा पाप-अंगीकार स्वयं परमेश्वर के विरुद्ध दोषारोप है। प्रत्येक सच्चा मसीही जानता है कि वह अपने पाप के लिए परमेश्वर को दोषी नहीं ठहरा सकता है। मैं ईश्वरीय सम्प्रभुता और मानवीय उत्तरदायित्व के बीच के सम्बन्ध को नहीं समझ सकता हूँ, परन्तु मैं यह तो जानता हूँ कि मेरे अपने मन की दुष्टता से जो उत्पन्न होता है उसे परमेश्वर की इच्छा पर नहीं थोपा जा सकता है। इसलिए हमें उस पवित्र जन से क्षमा की याचना करते हुए जिसके विरुद्ध हमने अपराध किया है, प्रार्थना करनी चाहिए क्योंकि हम दोषी हैं।

क्या प्रार्थना कुछ भी बदलती है?

परन्तु मध्यस्थता और विनती के विषय में क्या कहेंगे? धार्मिक, आत्मिक और मनोवैज्ञानिक लाभों के विषय में बात करना अच्छा है (और वह सब कुछ भी जो प्रार्थना से प्राप्त हो सकता है), परन्तु वास्तविक प्रश्न के विषय में क्या कहें—क्या प्रार्थना से कुछ अन्तर पड़ता है? क्या यह वास्तव में कुछ भी बदलती है? किसी ने मुझसे एक बार यह प्रश्न पूछा, किन्तु थोड़ा सा भिन्न रीति से: “क्या प्रार्थना परमेश्वर के मन को बदलती है?” मेरा उत्तर विरोध की आंधियों को लेकर आया। मैंने तो केवल कहा था, “नहीं।” जबकि, यदि उस व्यक्ति ने मुझसे यह पूछा होता कि, “क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?” तो मैंने उत्तर दिया होता, “अवश्य ही!”

बाइबल कहती है कि परमेश्वर ने कुछ बातों को अनन्त काल से ठहराया है। उन बातों का होना अनिवार्य है। यदि आप व्यक्तिगत रीति से प्रार्थना करते

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

या फिर यदि आप और मैं साथ में मिलकर प्रार्थना करते या फिर संसार के सभी मसीही एक साथ प्रार्थना करते, तो भी यह उस बात को नहीं बदलेगी, जिसको परमेश्वर ने अपनी छिपी हुई योजना में करने का निश्चय किया है। चाहे हमने यीशु के वापस न लौटने हेतु प्रार्थना करने का निर्णय करें, तौभी वह अवश्य वापस आएगा। हो सकता है कि आप पूछें कि, “क्या बाइबल यह नहीं कहती है कि यदि दो या तीन किसी भी बात पर सहमत हों, तो वे इसे प्राप्त करेंगे?” हाँ, वह कहती है, परन्तु वह खण्ड कलीसिया के अनुशासन के विषय में बात कर रहा है, प्रार्थना निवेदनों के विषय में नहीं। इसलिए हमें प्रार्थना के विषय में बाइबल की सभी शिक्षा को ध्यान में रखना चाहिए और किसी एक खण्ड को शेष भागों से पृथक नहीं करना चाहिए। हमें पृथक एकलवाद पठन का प्रतिरोध करते हुए सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र के प्रकाश में इस विषय को समझना चाहिए।

फिर से, आप यह पूछ सकते हैं कि, “क्या समय-समय पर बाइबल यह नहीं कहती है कि परमेश्वर पछताता है?” हाँ, पुराना नियम निश्चित रूप से ऐसा कहता है। योना की पुस्तक हमें बताती है कि परमेश्वर ने नीनवे के लोगों के लिए जो न्याय का निर्णय लिया था, उससे उसने “पश्चाताप” किया (योना 3:10)। यहाँ पश्चाताप के विचार का उपयोग करते हुए, बाइबल परमेश्वर का वर्णन कर रही है, जो आत्मा है, जिसे ईश्वरज्ञानी “मानवरूपी” (*anthropomorphic-एन्थ्रोपोमोर्फिक*) भाषा कहते हैं। स्पष्ट रूप से बाइबल का यह अर्थ नहीं है कि परमेश्वर ने उसी प्रकार से पश्चाताप किया जैसे कि हम पश्चाताप करते हैं; अन्यथा, हम ठीक ही मान सकते हैं कि परमेश्वर ने पाप किया था और इसलिए उसे स्वयं एक उद्धारकर्ता की आवश्यकता होगी। इसका स्पष्ट रीति से अर्थ यह है कि परमेश्वर ने लोगों के ऊपर से न्याय के

संकट को हटा दिया। इब्रानी शब्द *नाखाम* -*nacham*, जिसका अनुवाद “पश्चाताप” किया गया है, इस प्रकरण में इसका अर्थ “सांत्वना” या “चैन” है। परमेश्वर को सांत्वना मिली और उसको चैन मिला जब उसने देखा कि लोग अपने पाप से फिर गए हैं, और इसलिए उस न्यायदण्ड को जिसे उसने उन पर डालने की घोषणा की थी निरस्त कर दिया।

जब परमेश्वर लोगों के सरो पर अपने न्याय की तलवार रखता है, और वे पश्चाताप करते हैं और फिर वह अपने न्यायदण्ड को वापस ले लेता है, तो क्या उसने सचमुच में अपना मन परिवर्तित किया है?

परमेश्वर का मन नहीं बदलता है क्योंकि परमेश्वर नहीं बदलता है। बातें परिवर्तित होती हैं, और वे उसकी सम्प्रभु इच्छा के अनुरूप परिवर्तित होती हैं, जिसे वह अपने द्वितीयक साधनों और द्वितीयक गतिविधियों द्वारा कार्यान्वित करता है। उसके लोगों की प्रार्थना उन साधनों में से एक है जिसका उपयोग वह इस संसार में कार्यों को पूर्ण करने के लिए करता है। इसलिए यदि आप मुझसे पूछते हैं कि क्या प्रार्थना बातों को बदल देती है, तो मैं बिना हिचकिचाते हुए उत्तर देता हूँ “हाँ!”

यह जानना असम्भव है कि मानव इतिहास का कितना भाग परमेश्वर के तत्काल हस्तक्षेप को प्रतिबिम्बित करता है और कितना मानव अभिकर्ताओं के द्वारा परमेश्वर के कार्य को प्रकट करता है। इसके विषय में कैल्विन का प्रिय उदाहरण था, अय्यूब की पुस्तक। शबा और कसदीयों ने अय्यूब के गधों और ऊँटों को ले लिया था। क्यों? क्योंकि शैतान ने ऐसा करने के लिए उनके मनों को उकसाया था। परन्तु क्यों? क्योंकि शैतान ने जिस भी रीति से वह चाहे अय्यूब की विश्वासयोग्यता की परीक्षा लेने के लिए परमेश्वर से अनुमति प्राप्त

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

की थी, केवल वह अय्यूब के जीवन को हानि नहीं पहुंचा सकता था। परमेश्वर ने ऐसी बात के लिए सहमति क्यों दी थी? तीन कारणों से: (1) शैतान की निन्दा को शान्त करने के लिए; (2) स्वयं को निर्दोष ठहराने के लिए; और (3) अय्यूब को शैतान की निन्दा से निर्दोष ठहराने के लिए। परमेश्वर के कार्यों को उचित ठहराने के लिए ये सभी तर्क सम्पूर्णता से धर्मी एवं न्यायसंगत हैं।

इसके विपरीत, इन दो समूहों को उकसाने में शैतान का उद्देश्य अय्यूब से परमेश्वर की ईश्वरनिन्दा करवाना था—जो कि सम्पूर्ण रीति से एक दुष्ट उद्देश्य था। परन्तु हम ध्यान देते हैं कि शैतान ने अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए कुछ भी अलौकिक नहीं किया। उसने अय्यूब के पशुओं को चुराने के लिए मानव अभिकर्ताओं को चुना—शबा और कसदी, जो स्वभाव से दुष्ट थे। शबा और कसदी लोग अपनी चोरी और प्राणघाती जीवन शैली जीने के लिए जाने जाते थे। इसमें उनकी इच्छा सम्मिलित थी, परन्तु कोई बाध्यकारिता नहीं थी; उनके दुष्ट कार्यों के द्वारा परमेश्वर का उद्देश्य पूरा हुआ।

शबा और कसदी लोग चुनाव करने के लिए स्वतंत्र थे, परन्तु उनके लिए, जिस प्रकार हमारे लिए भी, स्वतंत्रता का अर्थ सदैव सीमाओं के भीतर स्वतंत्रता होता है। किन्तु हमें मानव स्वतंत्रता और मानव स्वायत्तता को परस्पर भ्रमित नहीं करना चाहिए। ईश्वरीय सम्प्रभुता और मानव स्वायत्तता के बीच सदैव टकराव होगा। ईश्वरीय सम्प्रभुता और मानव स्वतंत्रता के बीच कभी टकराव नहीं होता है। बाइबल कहती है कि मनुष्य स्वतंत्र है, परन्तु वह स्वयं के लिए स्वायत्त व्यवस्था नहीं है।

मान लीजिए कि शबा और कसदीयों ने प्रार्थना की होती, “हमें परीक्षा में

प्रार्थना का उद्देश्य

न पड़ने दे, परन्तु दुष्ट से बचा।” मुझे पूर्ण निश्चय है कि अय्यूब के पशुओं की चोरी फिर भी हो जाती, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि यह शबा और कसदीयों द्वारा ही होती। सम्भवतः परमेश्वर ने उनकी प्रार्थनाओं का उत्तर देने का चुनाव किया होता, परन्तु अय्यूब के पशुओं को चुराने के लिए उसने और दूसरे अभिकर्ताओं का उपयोग किया होता। सीमाओं के भीतर स्वतंत्रता है, और उन सीमाओं के भीतर, हमारी प्रार्थनाएं बातों को बदल सकती हैं। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि एलिय्याह ने प्रार्थना के द्वारा वर्षा को होने से रोक दिया था। वह ईश्वरीय सम्प्रभुता की अपनी समझ के कारण प्रार्थना करने से रुका नहीं था।

परमेश्वर के पुत्र की प्रार्थनाएं

यीशु मसीह के अतिरिक्त किसी भी मनुष्य को ईश्वरीय सम्प्रभुता की इतनी गहरी समझ नहीं थी। किसी भी व्यक्ति ने कभी उससे अधिक तीक्ष्णता के साथ या अधिक प्रभावी ढंग से प्रार्थना नहीं की थी। यहाँ तक कि गतसमनी में भी, उसने एक विकल्प की विनती की, एक भिन्न मार्ग के लिए। जब विनती नकारी गई, तो वह पिता की इच्छा के सम्मुख झुक गया। जिस एक कारण से हम प्रार्थना करते हैं वह है परमेश्वर की सम्प्रभुता, क्योंकि हम विश्वास करते हैं कि यह परमेश्वर की सामर्थ्य के अन्तर्गत है कि वह अपने उद्देश्य के निमित्त बातों को आयोजित करता है। ये ही सब तो सम्प्रभुता है—परमेश्वर के उद्देश्य के अनुसार बातों को आयोजित करना। तो फिर, क्या प्रार्थना परमेश्वर के मन को बदलती है? नहीं। क्या प्रार्थना बातों को बदलती है? हाँ, अवश्य।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

पवित्रशास्त्र की प्रतिज्ञा है कि “धर्मी जन की प्रभावशाली प्रार्थना से बहुत कुछ हो सकता है” (याकूब 5:16)। समस्या यह है कि हम इतने धर्मी नहीं हैं। प्रार्थना प्रायः जिस बात को बदलती है वह है हमारी दुष्टता और हमारे हृदय की कठोरता। प्रार्थना करने के लिए यह अकेला ही पर्याप्त कारण होगा, भले ही अन्य कारणों में से कोई भी मान्य या सत्य न हो।

जोनाथन एडवर्ड्स ने “अति महान, प्रार्थना-सुनने वाला परमेश्वर,” (द मोस्ट हाई, ए प्रेयर-हियरिंग गॉड-*The Most High, a Prayer-Hearing God*) नामक शीर्षक के एक सन्देश में, दो कारण दिए, कि परमेश्वर प्रार्थना की मांग क्यों करता है:

परमेश्वर के सम्बन्ध में, प्रार्थना परमेश्वर की महिमा के लिए उस पर हमारी निर्भरता का उचित अंगीकार है। जैसे कि उसने सब कुछ को अपनी महिमा के लिए बनाया है, इसी रीति से वह अपने लोगों द्वारा महिमान्वित और अभिस्वीकृत किया जाएगा; और यह उचित है कि वह उन लोगों से इसकी अपेक्षा करे जो उसकी दया के लाभार्थी होंगे . . . उसके लिए जिसकी हमें आवश्यकता है [यह] परमेश्वर की शक्ति और दया पर हमारी निर्भरता की एक उपयुक्त अभिस्वीकृति है, और लेकिन यह उस महान रचनाकार और सब भलाई के सोते के निमित्त उपयुक्त सम्मान का दिया जाना है।

हमारे स्वयं के सम्बन्ध में, परमेश्वर हमसे प्रार्थना की अपेक्षा करता है . . . उत्साह पूर्ण प्रार्थना कई रीति से हृदय को तैयार करती है। इससे हमारी आवश्यकता की अनुभूती स्पष्ट होती है . . .

प्रार्थना का उद्देश्य

जिससे मन [उसकी दया] को प्राप्त करने के लिए और अधिक तैयार होता है . . . परमेश्वर से हमारी प्रार्थना हमारे द्वारा मांगी जाने वाली दया के लिए परमेश्वर पर हमारी निर्भरता के निमित्त और परमेश्वर की पर्याप्तता पर विश्वास के एक उपयुक्त अभ्यास हेतु, हमारे भीतर एक उपयुक्त समझ और विचार को उत्तेजित कर सकती है, ताकि दया प्राप्त होने पर हम उसके नाम की महिमा करने के लिए तैयार किए जा सकें। (द वर्क्स ऑफ जोनाथन एडवर्ड्स (जोनाथन एडवर्ड्स के लेख) [कार्लिसल, पेंसिल्वेनिया: बैनर ऑफ ट्रूथ ट्रस्ट, 1974], 2:116)

परमेश्वर जो कुछ भी करता है वह सर्वप्रथम अपनी महिमा के लिए और उसके बाद ही फिर हमारे लाभ के लिए करता है। हम प्रार्थना करते हैं क्योंकि परमेश्वर हमें प्रार्थना करने की आज्ञा देता है, क्योंकि इससे उसकी महिमा होती है, और क्योंकि इससे हमें लाभ होता है।

अध्याय तीन

प्रार्थना का नमूना

यीशु ने बहुत से आश्चर्यकर्मों को किया। अपनी सेवकाई के समयकाल में, वह पानी पर चला, पानी को दाखरस में बदला, बीमारों को चंगा किया, मृतकों को जिलाया। जैसा कि यूहन्ना ने कहा, “और भी अनेक कार्य हैं जो यीशु ने किए। यदि उन्हें एक-एक करके लिखा जाता, तो मैं सोचता हूँ कि जो पुस्तकें लिखी जाती वे संसार में भी न समाती” (यूहन्ना 21:25)।

मुझे इस बात ने सदैव अचम्भित किया है कि चेलों ने यीशु से यह नहीं पूछा कि पानी पर कैसे चलें, आन्धी को कैसे शान्त करें, या उसके अन्य किसी आश्चर्यकर्मों को कैसे किया जाए। उन्होंने, हालाँकि, यीशु से अवश्य यह मांगा

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

कि वह उन्हें प्रार्थना के विषय में सिखाये। ध्यान दीजिए कि उन्होंने यीशु से यह नहीं कहा कि हमें सिखा कि प्रार्थना कैसे करते हैं; इसके विपरीत उन्होंने याचना की कि, “हमें प्रार्थना करना सिखा” (लूका 11:1)। मुझे इस बात का निश्चय है कि यीशु द्वारा प्रकट की गई सामर्थ्य और उस समय के बीच अटूट सम्बन्ध को चेलों ने स्पष्टता से देखा होगा जो उसने अपने पिता के साथ एकान्त में बातचीत करते हुए बिताया था।

यीशु प्रार्थना के सम्बन्ध में जो निर्देश देता है वह हमें दोनों मत्ती 6 में पहाड़ी उपदेश से और लूका 11 से मिलता है। यीशु इन शब्दों के साथ प्रार्थना के लिए नमूने पर अपनी टिप्पणियों को प्रस्तुत करता है:

“जब तू प्रार्थना करे तो पाखण्डियों के सट्टन न हो, क्योंकि लोगों को दिखाने के लिए आराधनालयों और सड़कों के मोड़ों पर खड़े होकर प्रार्थना करना उनको प्रिय लगता है। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना पूरा प्रतिफल पा चुके। परन्तु तू जब प्रार्थना करे तो अपने भीतरी कक्ष में जा और द्वार बन्द करके अपने पिता से जो गुप्त में है प्रार्थना कर, और तेरा पिता जो गुप्त में देखता है तुझे प्रतिफल देगा।

“और जब तू प्रार्थना करे तो गैर-यहूदियों की तरह अर्थहीन बातें न दोहरा, क्योंकि वे सोचते हैं कि उनके अधिक बोलने से उनकी सुनी जाएगी। इसलिए उनके सट्टन न बनना, क्योंकि तुम्हारा पिता मांगने से पूर्व ही तुम्हारी आवश्यकता को जानता है। अतः तुम इस प्रकार प्रार्थना करना।” (मत्ती 6:5-9)

प्रार्थना का नमूना

ध्यान दीजिए कि यीशु ने कहा, “अतः तुम इस प्रकार प्रार्थना करना,” यह नहीं कहा कि “इस प्रार्थना को करना” या “इन शब्दों की प्रार्थना करना।” एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कभी यीशु की यह मनसा थी कि हम इस प्रार्थना को दोहराएं। मैं प्रभु की प्रार्थना के उपयोग पर आक्रमण नहीं कर रहा हूँ; निश्चित रूप से एक विश्वासी के व्यक्तिगत जीवन या कलीसिया के भक्तिमय जीवन में इसका उपयोग करने में कुछ भी बुराई नहीं है। फिर भी यीशु हमें दोहराने के लिए एक प्रार्थना नहीं दे रहा था, इसके विपरीत उसने एक नमूना हमें यह दिखाने के लिए दिया है कि किस प्रकार से प्रार्थना करनी है। यीशु हमें प्राथमिकताओं की रूपरेखा प्रदान कर रहा था या वे बातें जिनको हमारे प्रार्थना के जीवन में प्राथमिकताएं होनी चाहिए। आइए प्रभु की प्रार्थना के भागों को एक-एक करके देखें।

हे हमारे पिता

प्रार्थना के पहले दो शब्द, जिस प्रकार से इनका उपयोग नए नियम में किया गया है महत्वपूर्ण हैं। पिता शब्द पुरानी वाचा के समुदाय में परमेश्वर को सम्बोधित करने के लिए मूल शब्द नहीं था। उसका नाम अकथनीय था; उसे किसी भी प्रकार की आत्मीयता के साथ सम्बोधित नहीं किया जाना था। पिता शब्द का उपयोग पुराने नियम में लगभग कभी भी परमेश्वर से बात करने या प्रार्थना में उसे सम्बोधित करने के लिए नहीं किया गया था। परन्तु नए नियम में, उस विभाजन को तोड़ते हुए जिसका प्रतीक मन्दिर का पर्दा था, यीशु हमें पिता के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध में लाया।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

यीशु ने हमें परमेश्वर को “पिता” बुलाने का एक अतुलनीय विशेषाधिकार दिया है।

अभिलेखों में यीशु पहला व्यक्ति था जिसने प्रार्थना को लेकर उसे परमेश्वर के साथ एक व्यक्तिगत संवाद बना दिया। यीशु, जो अरामी भाषा बोलता था, उसने अरामी शब्द *अब्बा* का उपयोग किया, जिसका सबसे उत्तम अनुवाद “बप्पा” या “पापा” होगा। हम चेलों से उनकी चिंतायुक्त रुदन को लगभग सुन सकते हैं और उनके चेहरों पर आश्चर्य की झलक को देख सकते हैं: “यीशु, तुम्हारा यह तात्पर्य नहीं है। तुम गम्भीर तो नहीं हो सकते! हमें परमेश्वर का नाम ऊँचे स्वर से बोलने की भी अनुमति नहीं है। हम उसे *पिताजी* भी नहीं बुलाते हैं, *पापा* तो दूर की बात है!”

विडम्बना तो यह है कि आज हम एक ऐसे संसार में रहते हैं जो यह मानता है कि परमेश्वर सबका पिता है, कि सभी लोग भाई हैं। हम इसे इन घिसी-पिटी उक्तियों में सुनते हैं “परमेश्वर का पितृत्व” और “मनुष्य का भ्रातृत्व।” परन्तु पवित्रशास्त्र में कहीं नहीं लिखा है कि सभी मनुष्य हमारे भाई हैं। जबकि, ये अवश्य कहता है कि सभी मनुष्य हमारे *पड़ोसी* हैं।

एक सीमित अर्थ है जिसमें परमेश्वर एक जीवन दाता और पालनहार के रूप में सभी मनुष्यों का पिता है (*progenitor par excellence-प्रोजेनेटर पार एक्सीलेंस*) सम्पूर्ण मानवजाति का सर्वोत्कृष्ट मूलपुरखा। परन्तु बाइबल में कुछ भी यह संकेत नहीं करता है कि कोई भी व्यक्ति परमेश्वर के पास अंतरंग रीति से पहुंच सकता है। केवल एक ही अपवाद तब है जब उस व्यक्ति को परमेश्वर के परिवार में लेपालक लिया गया है, जिसने ख्रीष्ट

के प्रायश्चित पर उद्धार के लिए विश्वास व्यक्त किया है और उसकी प्रभुता के अधीन हुआ है। तब और केवल तभी किसी व्यक्ति को परमेश्वर को अपना पिता कहने का विशेषाधिकार प्राप्त होता है। जितनों ने उसे ग्रहण किया, परमेश्वर ने “उन्हें परमेश्वर की सन्तान होने का अधिकार [सौभाग्य, विशेषाधिकार] दिया” (यूहन्ना 1:12)। केवल तभी परमेश्वर मनुष्यों को “पुत्र” कह कर बुलाता है। यूनानी शब्द *exousia*-*एक्सूसिया*, का अनुवाद “बनने का अधिकार” है, जो कि उस कार्य को करने की स्वतंत्रता और उसी क्रिया हेतु अधिकार को दर्शाता है। पुत्र होने के उचित प्रमाण के बिना परमेश्वर को “पिता” पुकारना अत्यन्त अक्खड़पन और अहंकार का कार्य है।

हम प्रभु की प्रार्थना के परिचय में विश्वव्यापी पितृत्व और भ्रातृत्व का विचार नहीं पाते हैं। इस सांस्कृतिक अनकही पूर्वधारणा के कारण हम समझने में चूक जाते हैं कि यीशु क्या कह रहा है। सबसे पहले स्थान पर, परमेश्वर के पितृत्व को संसार में किसी के द्वारा भी कम करके आंका नहीं जा सकता है। केवल यीशु ही वह व्यक्ति है जो परमेश्वर को इस रीति से सम्बोधित करने का परम अधिकार रखता है, क्योंकि केवल यीशु ही *मोनोगेस-monogenes* है, “पिता से एकलौता उत्पन्न” (यूहन्ना 1:14), सम्पूर्ण अनन्त काल से ही पिता के साथ एक अनोखे पिता-पुत्र सम्बन्ध में अस्तित्व में है।

यदि किसी भी अर्थ में कोई विश्वव्यापी पितृत्व और भ्रातृत्व है, तो उसे यूहन्ना 8 में फरीसियों के साथ यीशु की चर्चा के सन्दर्भ में ही होना होगा। फरीसी लोग इब्राहीम की सन्तान, तथा अपने पूर्वजों से सम्बन्ध के कारण परमेश्वर का वंश होने का दावा कर रहे थे। यीशु ने इस बात पर उन्हें चुनौती देते हुए कहा, “यदि तुम इब्राहीम की सन्तान होते, तो जो कार्य इब्राहीम ने

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

किए तुम भी करते, परन्तु अब तुम मुझ जैसे मनुष्य को मार डालना चाहते हो जिसने तुम्हें उस सत्य को बताया जो मैंने परमेश्वर से सुना। ऐसा तो इब्राहीम ने नहीं किया . . . तुम अपने पिता शैतान से हो, और अपने पिता की इच्छाओं को पूरा करना चाहते हो” (यूहन्ना 8:39-40, 44)।

परमेश्वर की सन्तान और शैतान की सन्तान के मध्य एक स्पष्ट अन्तर है। परमेश्वर की सन्तान उसकी वाणी को सुनते हैं और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। शैतान की सन्तान परमेश्वर की वाणी को नहीं सुनते हैं; वे अपने पिता शैतान की इच्छा को पूरा करने के द्वारा उसकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। केवल दो ही परिवार हैं, और प्रत्येक जन दोनों में से एक से सम्बन्धित है। हालाँकि, दोनों समूहों में एक बात समान है। प्रत्येक परिवार के सदस्य अपने पिता की इच्छा को पूरा करते हैं, चाहे वह परमेश्वर हो या शैतान।

यदि हम नए नियम को देखें, और जाँच पड़ताल करें कि परमेश्वर के पुत्र कौन हैं, तो इसका उत्तर स्पष्ट है। नया नियम इस बिन्दु पर न तो अस्पष्ट और न ही रहस्यपूर्ण है। रोमियों 8:14-17 का पहला भाग यह कहता है:

वे सब जो परमेश्वर के आत्मा के द्वारा चलाए जाते हैं, वे परमेश्वर के सन्तान हैं। तुम ने दासत्व का आत्मा नहीं पाया है कि फिर भयभीत हो, परन्तु पुत्रों के समान लेपालकपन का आत्मा पाया है, जिस से हम “हे अब्बा! हे पिता!” कह कर पुकारते हैं। आत्मा स्वयं हमारी आत्मा

के साथ मिल कर साक्षी देता है कि हम परमेश्वर की सन्तान हैं। यदि हम सन्तान हैं तो उत्तराधिकारी भी—परमेश्वर के उत्तराधिकारी और ख्रीष्ट के साथ सह-उत्तराधिकारी।

इस खण्ड के 14वें पद में, जो शब्द- सब (यूनानी में ऑटोय-*autoi*) है वह बलपूर्वक रूप में है जो कि एक विशिष्टता को इंगित करता है। पद का सबसे अच्छा अनुवाद है, “वे सब जो परमेश्वर के आत्मा के द्वारा चलाए जाते हैं, अकेले वे ही परमेश्वर की सन्तान हैं” या “केवल वे ही परमेश्वर की सन्तान हैं।” पौलुस सिखाता है कि केवल पवित्र आत्मा के द्वारा ही हम परमेश्वर को अपना पिता कह सकते हैं। नए नियम में इसका महत्व यह है कि हम पुत्र हैं, अवैध सन्तान नहीं, क्योंकि हमारा ख्रीष्ट के साथ मिलन हुआ है। हमारा पुत्रत्व स्वतः नहीं है; यह उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं होता है और यह आनुवांशिक अवश्य ही नहीं है, परन्तु यह व्युत्पन्न हुआ है। इस क्रिया के लिए नए नियम का शब्द है *लेपालकपन*। ख्रीष्ट के द्वारा परमेश्वर के साथ हमारे लेपालकपन के सम्बन्ध के कारण, हम ख्रीष्ट के साथ संयुक्त उत्तराधिकारी बन जाते हैं।

यह केवल इसलिए है क्योंकि हम ख्रीष्ट में हैं और ख्रीष्ट हम में है, कि हमारे पास परमेश्वर को अपने पिता के रूप में सम्बोधित करने का और पिता-पुत्र के सम्बन्ध के अन्तर्गत उसके निकट जाने का विशेषाधिकार है। मार्टिन लूथर ने एक बार कहा था कि यदि वह प्रभु की प्रार्थना के केवल पहले दो शब्दों को ही समझ लेते, तो वह फिर कभी भी पहले जैसे नहीं रहते।

यह शब्द हमारे दर्शाता है कि परमेश्वर को “पिता” कहने का अधिकार

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

केवल मेरा नहीं है। यह एक सामूहिक विशेषाधिकार है जो ख्रीष्ट की सम्पूर्ण देह के पास है। जब मैं प्रार्थना करता हूँ, तो मैं एक पृथक् व्यक्ति के रूप में परमेश्वर के समक्ष नहीं आता हूँ, परन्तु एक परिवार के, तथा सन्तों के समाज के सदस्य के रूप में आता हूँ।

तू जो स्वर्ग में है

जिस समय यीशु ने प्रभु की प्रार्थना के शब्दों को बोला था, उस समय परमेश्वर की उपस्थिति के सटीक स्थान के विषय में एक विवाद चल रहा था। यीशु और कुएँ पर स्त्री के मध्य चर्चा में, यीशु ने यह दर्शाने में शीघ्रता की कि परमेश्वर आत्मा है, और इस प्रकार से उसे किसी एक विशेष स्थान पर केन्द्रित नहीं किया जा सकता है (यूहन्ना 4)। वह न तो गिरिज्जीम पर्वत पर था, जैसा उसने सोचा था, न ही यरूशलेम में, जैसा कि कुछ यहूदी मानते थे।

निश्चित रूप से, परमेश्वर सर्वोपस्थित है। उसकी ईश्वरीय उपस्थिति पर कोई सीमित प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी ख्रीष्ट ने पिता के स्वर्ग में होने की बात कही। क्यों? क्योंकि ख्रीष्ट परमेश्वर के सर्वोपरे होने के विषय में बात कर रहा था। चूँकि परमेश्वर इस सांसारिक प्रक्रिया का भाग नहीं है, वह प्रकृति का भाग नहीं है। उसको किसी स्थान में सीमित नहीं किया जा सकता है। वह परमेश्वर जिसे हम सम्बोधित करते हैं, वह संसार की सीमित सीमाओं से ऊपर और परे है।

प्रभु की प्रार्थना की प्रारम्भिक पंक्ति हमारे लिए एक ऊर्जावान तनाव प्रस्तुत करती है। यद्यपि हमें घनिष्ठता की भावना में प्रभु के सम्मुख आना है,

प्रार्थना का नमूना

फिर भी पृथक्ता का एक तत्व है। हम परमेश्वर के पास आ सकते हैं और उसे पिता कह सकते हैं, परन्तु पिता-पुत्र का यह सम्बन्ध उस प्रकार की अंतरंगता की अनुमति नहीं देता है जो अवमानना को उत्पन्न करे। हमें साहस के साथ सम्मुख आना है, हाँ, परन्तु कभी भी अहंकार या अक्खड़पन के साथ नहीं। “हे हमारे पिता” परमेश्वर की निकटता के विषय में बात करता है, परन्तु “स्वर्ग में” उसके भिन्नता की ओर, एवं उसका दूसरों से पृथक् किए जाने की ओर संकेत करता है। मुख्य बिन्दु यह है कि: जब हम प्रार्थना करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हम कौन हैं और हम किसको सम्बोधित कर रहे हैं।

तेरा नाम पवित्र माना जाए

परमेश्वर चाहे हमें कितना ही अपने समीप आने के लिए आमंत्रित करे, फिर भी हमारी पापमयता और उसकी महिमा के बीच एक असीम खाई है। वह तो स्वर्ग का है; हम पृथ्वी के हैं। वह सिद्ध है; हम असिद्ध हैं। वह असीमित है; हम सीमित हैं। वह पवित्र है; हम अपवित्र हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि परमेश्वर पूर्णतः हम से “भिन्न” है।

परमेश्वर की पावन “भिन्नता” एक ऐसा तथ्य है जिसे हारून के पुत्र भूल गए थे, परन्तु वे इसे केवल एक ही बार भूले। लैव्यव्यवस्था 10:1-3 में हम पढ़ते हैं:

हारून के पुत्रों, नादाब और अबीहू ने अपना-अपना धूपदान लेकर उसमें आग भरी और उसमें सुगन्धित द्रव्य डालकर यहोवा के सामने उस बाहरी आग को अर्पित किया यहोवा ने जिसकी आज्ञा नहीं दी

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

थी। तब यहोवा की ओर से आग निकलकर उन्हें भस्म कर गई और वे यहोवा के सामने मर गए। तब मूसा ने हारून से कहा, “यह वही वचन है जो यहोवा ने कहा था, ‘जो मेरे निकट आए वह मुझे पवित्र माने, हाँ, सब लोगों के सामने मेरी महिमा हो।’”

परमेश्वर माँग करता है कि उसे पवित्र जाना जाए, क्योंकि वह पवित्र है। वह अपने आदर के लिए जलन रखता है। वह इस खण्ड में सम्मान के लिए याचना नहीं करता है। इसके विपरीत, यह तथ्य का एक कथन है: “मुझे पवित्र माना जाएगा।” हमें कभी भी नादाब और अबीहू की घातक भूल नहीं करनी चाहिए और गम्भीरता रहित अनुचित व्यवहार में प्रभु परमेश्वर के सम्मुख नहीं आना चाहिए।

प्रभु की प्रार्थना की पहली याचिका को देखते हुए, हम देख सकते हैं कि यह पहली प्राथमिकता है जिसके विषय में यीशु ने बात की थी। उसका प्रारम्भिक अनुरोध यह था कि परमेश्वर के नाम को पवित्र माना जाए। यह यूनानी शब्द *हागिओस-hagios* है, जिसका अक्षरशः अनुवाद “पवित्र” किया गया है। मसीही व्यक्ति के लिए यह देखना सर्वोच्च प्राथमिकता है कि परमेश्वर का नाम पवित्र माना जाए, क्योंकि वह पवित्र है। यदि एकमात्र यही प्रार्थना निवेदन मसीही समुदाय द्वारा किया गया होता, और यदि विश्वासी लोग इसे सत्यनिष्ठा से और नियमित रूप से करते, तो मेरा विश्वास है कि जिस जागृति के लिए हम प्रार्थना करते हैं और जिस सुधार की हम निष्ठा के साथ इच्छा करते हैं वह कुछ ही समय में सम्पन्न हो जाता। सब कुछ—हमारा कार्य, हमारी सेवकाई, और हमारे दैनिक जीवन के सभी आयाम—प्रभावित होते।

पुराने नियम में, इस्राएलियों का चुना जाना, उनके धार्मिक तथा आहार सम्बन्धी नियमों तथा विधियों को घोषित करने का कथित उद्देश्य उन्हें पवित्र राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था, अर्थात् प्राचीन काल की सामान्य संस्कृतियों से पृथक् किया हुआ। क्या यह उनके सम्मान के लिए था? नहीं, यह परमेश्वर के सम्मान के लिए था। परमेश्वर का सम्मान आज मसीही समुदाय के लिए एक धुन बन जाना चाहिए। सम्मान हमारे संस्थाओं, हमारे पंथों, आराधना की हमारी व्यक्तिगत रीतियों या यहाँ तक कि हमारी किसी एक कलीसिया को भी नहीं जाना चाहिए, परन्तु केवल परमेश्वर को।

यहेजकेल 36:22 में दिए गए शब्दों पर विचार कीजिए: “प्रभु यहोवा यों कहता है: हे इस्राएल के घराने, मैं तेरे निमित्त नहीं पर अपने उस पवित्र नाम के कारण कुछ करने पर हूँ जिसे तुमने उन जातियों के मध्य अपवित्र ठहराया जहाँ तुम गए।” क्या ही बड़ा परिवर्तन है। वह चुना गया देश जिसे परमेश्वर की महानता को प्रदर्शित करने के लिए अतुल्य विशेषाधिकार प्राप्त हुआ था उसने परमेश्वर के नाम को सार्वजनिक रूप से निंदित करने का चुनाव किया। परमेश्वर को उनके राजद्रोह के लिए उन्हें डपटना पड़ा। अन्तिम विश्लेषण में, हमारे नाम, हमारी संस्थाएं और हमारे अनेक प्रयास तब तक व्यर्थ हैं जब तक हम परमेश्वर के नाम का सम्मान नहीं करते हैं।

आज हमारे संसार में परमेश्वर के भय का एक भयानक अभाव प्रबल है। मार्टिन लूथर ने एक बार टिप्पणी की थी कि उनके आस-पास के लोग परमेश्वर से ऐसे बात करते हैं “जैसे कि वह किसी मोची के यहाँ प्रशिक्षु हैं।” यदि लूथर के दिन में यह सच था, तो आज कितना अधिक ऐसा होगा? फिर भी यीशु ने

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

जो सर्वोच्च प्राथमिकता स्थापित की, वह यह है कि परमेश्वर के नाम को पवित्र, सम्मानित और ऊँचे पर उठाया जाना चाहिए।

परमेश्वर का नाम एक अभिव्यक्ति है कि वह कौन है। हम परमेश्वर के स्वरूप-धारक हैं। जहाँ परमेश्वर का सम्मान नहीं किया जाता है, यह निश्चित है कि वहाँ उसके स्वरूप-धारकों को भी सम्मान की हानि उठानी होगी।

तेरा राज्य आए

परमेश्वर का राज्य पवित्रशास्त्रों में एक केन्द्रीय मूल-भाव है। यह यीशु की शिक्षा और उपदेश का मुख्य विषय था। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के सन्देश की पूर्ति के रूप में यीशु आया था, जो कि स्पष्ट, सटीक और सरल था कि: “मन फिराओ, क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट आ गया है” (मत्ती 3:2)।

यीशु ने पहाड़ी उपदेश में राज्य पर ध्यान केन्द्रित किया, जो कि उसके प्रचार का मुख्य उपदेश था। इस केन्द्र-बिन्दु के कारण, यह उपदेश केवल अच्छे जीवन के लिए सिद्धांतों की एक नैतिक प्रस्तुतिकरण से कहीं अधिक था। यीशु उन लोगों के चरित्र के लक्षणों के विषय में बात कर रहा था जो परमेश्वर के राज्य के भीतर एक छुटकारा प्राप्त जीवन शैली को जीते हैं।

अमरीकी मसीहों के लिए राज्य की अवधारणा को समझना कठिन है। हम एक लोकतंत्र हैं, जहाँ एक राजतंत्र का विचार मात्र ही घृणास्पद है। हम उन क्रान्तिकारियों के उत्तराधिकारी हैं, जिन्होंने उद्धोषणा की, “हम यहाँ किसी महाराजा की सेवा नहीं करेंगे!” हमारे राष्ट्र का निर्माण प्रभुसत्ता के प्रतिरोध पर

बना है। अमेरिकियों ने राजतंत्र से छुड़ाये जाने के लिए लड़ाइयों और सम्पूर्ण युद्धों को लड़ा है। हम नए नियम के उन लोगों के मन को कैसे समझें जो दाऊद के पुत्र के लिए प्रार्थना कर रहे थे कि वह राजतंत्र और इस्राएल के सिंहासन को पुनः स्थापित करे?

राजा आ गया है। ख्रीष्ट, परमेश्वर के दाहिने हाथ पर विराजमान है और राजा के रूप में राज्य करता है। परन्तु यीशु कलीसिया का केवल आत्मिक राजा नहीं हैं, जहाँ उसका एकमात्र उत्तरदायित्व हमारे धर्मपरायणता पर अधिकार करना है, जैसे कि मानो कलीसिया और राज्य के बीच कोई पृथकता है। यीशु संसार का राजा है। यह स्वर्गारोहण का एक तथ्य है। हालाँकि, यह वास्तविकता संसार द्वारा मानी या स्वीकार नहीं की जाती है। यद्यपि यह राजशाही एक स्थापित तथ्य है, यह उस संसार के लिए अदृश्य है जिसमें हम रहते हैं। स्वर्ग में, इसके विषय में कोई प्रश्न ही नहीं है। पृथ्वी पर, इसके विषय में अत्यधिक प्रश्न हैं। यीशु कह रहा था कि हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि पृथ्वी पर परमेश्वर का राज्य दिखाई दे, कि अदृश्य को दृश्यमान बनाया जाए।

परमेश्वर के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह हमारे दिन या पश्चिमी संस्कृति के लिए कोई नई या अनोखी बात नहीं है। भजन 2:2-3 में, हम पढ़ते हैं: “यहोवा और उसके अभिषिक्त के विरुद्ध पृथ्वी के राजा उठ खड़े होकर, और शासक एक साथ मिलकर यह सम्मति करते हैं, ‘आओ हम

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

उनकी जंजीरों को तोड़ डालें और उनके बन्धनों को अपने ऊपर से उतार फेंकें।”

इस विद्रोह के प्रति परमेश्वर का प्रतिउत्तर क्या है? “वह जो स्वर्ग में विराजमान है हँसता है; प्रभु उनको ठट्ठों में उड़ाता है” (भजन 2:4)। परन्तु परमेश्वर लम्बे समय के लिए आनन्दित नहीं हैं, क्योंकि हम 5-6 पदों में पढ़ते हैं, “तब वह अपने क्रोध में उनसे बातें करता, और अपने प्रकोप में उन्हें भयभीत कर देता है, ‘मैं तो अपने राजा को अपने पवित्र पर्वत सिंघों की राजगद्दी पर बैठा चुका हूँ।”

प्रभु उन लोगों से बात करता है, जिन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह किया है—जो स्वाधीनता के इस वैश्विक घोषणा में सम्मिलित हैं—और वह घोषणा करता है कि, “मैंने अपने राजा को स्थापित किया है, मैंने अपने ख्रीष्ट का अभिषेक किया है, और तुम्हारे लिए उत्तम होगा कि तुम उसके अधीन हो जाओ।” पद 10 में आगे पढ़ते हुए, हम कुछ और सीखते हैं:

इसलिए, अब हे राजाओं, समझदारी दिखाओ; और पृथ्वी के न्यायियों, चेतावनी पर ध्यान दो। भय सहित यहोवा की उपासना करो, . . . ऐसा न हो कि वह क्रोधित हो जाए, और तुम मार्ग में ही नष्ट हो जाओ, क्योंकि उसका प्रकोप शीघ्र भड़क सकता है। क्या ही धन्य हैं वे सब जो उसकी शरण लेते हैं।

मसीहियों को ख्रीष्ट के राज्य के प्रकट होने और उसके राज्य के उदय होने के लिए प्रार्थना करनी है। यदि यह हमारी प्रार्थना है, तो राजा के प्रति अपनी

प्रार्थना का नमूना

निष्ठा दिखाना हमारा उत्तरदायित्व है। लोगों को यह अनुमान नहीं लगाना पड़ेगा कि हम किसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

तेरी इच्छा पूरी हो

यह वाक्यांश यह नहीं मांग कर रहा है कि परमेश्वर की निर्धारित सम्मति पूर्ण हो जाए या कि परमेश्वर उन बातों को प्रारम्भ करे, जिन्हें उसने अनन्तकाल से पूर्वनिर्धारित किया है। इसके विपरीत, हम परमेश्वर की प्रकट निर्देशात्मक इच्छा का पालन करने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—जो उसने अपनी आज्ञाओं के द्वारा हम पर स्पष्ट किया है। यह तीसरी याचिका परमेश्वर के लोगों की ओर से आज्ञाकारिता के लिए प्रार्थना है, कि जो परमेश्वर के लोग हैं वे परमेश्वर के आदेशों का पालन करें।

जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो

परमेश्वर के राज-दरबार में स्वर्गदूत वही करते हैं जो वह कहता और इच्छा करता है। पृथ्वी पर उसके लोग ऐसा नहीं करते हैं। परमेश्वर वाचा बांधने वाला है; हम वाचा तोड़ने वाले हैं, प्रायः पिता की इच्छा के साथ टकराव की राह पर होते हैं।

एक अर्थ है जिसमें पहली तीन याचिकाएं सभी एक ही बात कह रही हैं। परमेश्वर के नाम का आदर करना, उसके राज्य की दृश्यता, और उसकी इच्छा का पालन करना लगभग एक ही विचार है जिसको तीन अलग-अलग प्रकार

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

से दोहराया गया है। किन्तु वे अविभाज्य रूप से सम्बन्धित हैं। परमेश्वर हमारी आज्ञाकारिता से सम्मानित होता है, उसका राज्य हमारी आज्ञाकारिता के द्वारा दृश्यमान बनाया जाता है, और स्पष्ट रूप से उसकी इच्छा तब पूरी होती है जब हम उस इच्छा के प्रति आज्ञाकारी होते हैं। ये वे प्राथमिकताएँ हैं जिन्हें यीशु ने निर्धारित किया है।

हमें अहंकार पूर्वक परमेश्वर की उपस्थिति में शीघ्रता से नहीं आना चाहिए, उस पर अपने तुच्छ अनुरोधों से आक्रमण करते हुए, यह भूल कर कि हम किसे सम्बोधित कर रहे हैं। हमें यह सुनिश्चित करना है कि हमने सृष्टि के परमेश्वर को उचित रीति से ऊँचे पर उठाया है। परमेश्वर को उचित आदर, प्रशंसा, और महिमा मिलने के पश्चात ही परमेश्वर के लोगों की याचिकाएँ उचित स्थान लेती हैं।

हमारे दिन भर की रोटी आज हमें दे

परमेश्वर अपने लोगों के लिए प्रावधान करता है। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ पर अनुरोध दैनिक रोटी के लिए है, न कि दैनिक माँस के टुकड़े या उत्तम पसली के टुकड़े के लिए। परमेश्वर अनिवार्य आवश्यकताओं को प्रदान करता है, परन्तु सदैव सबसे उत्तम वस्तुओं को नहीं।

मिस्र देश से इस्राएलियों के छुटकारे के पश्चात उनके अनुभव को देखिए। परमेश्वर ने आश्चर्यजनक रीति से लोगों को मन्ना के रूप में रोटी प्रदान की। फिर क्या हुआ? पहला, उन्होंने उसके प्रावधान के लिए उसे धन्यवाद देना बन्द कर दिया। दूसरा, उन्होंने उसके प्रावधान के लिए मांग करना बन्द कर दिया। तीसरा, वे उसके प्रावधान के विषय में कुड़कुड़ाने लगे। अन्त में, वे इस बात

को स्मरण करने लगे कि मिस्र में वस्तुएं कितनी अच्छी थीं। वे लोग खीरे, खरबूजे, प्याज और लहसुन के विषय में सपने देखने लगे जो उन्होंने मिस्र में खाए थे—उन सभी उत्पीड़न, कठिनाइयों और यातनाएँ को भुलकर जो उन्होंने फिरौन के हाथों से सहन किए थे। वे इस बात के लिए कुड़कुड़ाने लगे कि उन्हें नाशते के लिए मन्ना, दोपहर के भोजन के लिए मन्ना और रात के खाने के लिए भी मन्ना खाना पड़ रहा था। इस्राएलियों ने मन्ने को भट्टी में सेक के खाया, मन्ने की कचौड़ी, मन्ने की मिठाई, उबला हुआ मन्ना, पका कर के मन्ना खाया, और भून कर मन्ना खाया। शीघ्र ही, वे माँस के लिए चिल्लाने लगे। यह घटना गिनती की पुस्तक 11:18-20 में हमें बताई गयी है:

इन लोगों से कह, “अपने आप को कल के लिए पवित्र करो और तुम्हें माँस खाने को मिलेगा; क्योंकि तुम यह कहकर यहोवा, के सुनते हुए रोए हो कि, ‘हमें माँस खाने को कौन देगा? क्योंकि हम तो मिस्र ही में भले थे।’ इसलिए यहोवा तुमको माँस देगा, और तुम खाओगे। तुम एक, या दो दिन, या पांच, या दस, या बीस दिन, ही नहीं वरन् महीने भर खाते रहोगे, जब तक वह तुम्हारे नथनों से निकलने न लगे और तुम उस से घृणा न करने लगे।”

परमेश्वर ने कहा, “यदि तुम्हें माँस चाहिए, तो मैं तुम्हें माँस दूंगा, और तुम तब तक माँस खाओगे जब तक तुम इससे घृणा न करने लगे।”

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

एक बात जो पाप में पतित हमारी स्थिति को प्रकट करती है वह है स्वनिर्मित व्यक्ति की अवधारणा, जो अपनी सम्पत्ति के बहुतायत का श्रेय लेता है और अपने सभी प्रावधानों के स्रोत को भूल जाता है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वह सब कुछ जो हमारे पास है वह अंततः परमेश्वर हमें प्रदान करता है।

जैसे हमने अपने अपराधियों को क्षमा किया है,
वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर

प्रार्थना करने के लिए यह एक अत्यन्त जोखिमपूर्ण प्रार्थना है, परन्तु इसमें एक सिद्धांत सम्मिलित है जिसे नया नियम बहुत गम्भीरता से लेता है। यीशु की सर्वोच्च चेतावनी यह है कि परमेश्वर हमारा न्याय इसके अनुसार करेगा कि हमने दूसरे लोगों के साथ कैसे न्याय किया। चूँकि मनुष्य अनुग्रह से बचाया गया है, इसलिए मनुष्य के उद्धार का इससे उत्तम प्रमाण क्या हो सकता है कि वह दूसरों को वही अनुग्रह प्रदान करे जो उसने स्वयं प्राप्त किया है? यदि ऐसा अनुग्रह हमारे जीवन में सहजदृश्य नहीं है, तो हम वैध रूप से अपने स्वयं के कथित परिवर्तन की वास्तविकता पर प्रश्न उठा सकते हैं।

हमें इस बिन्दु पर परमेश्वर को गम्भीरता से लेना चाहिए। मती 18:23-35 में, यीशु उन दो व्यक्तियों की कहानी बताता है, जिन्होंने ऋण लिया था। एक का ऋण लगभग 10 करोड़ रुपये और दूसरे का लगभग 1800 रुपये था। जिस व्यक्ति ने अधिक ऋण लिया था उसका ऋण उस व्यक्ति द्वारा क्षमा कर दिया गया जिससे उसने ऋण लिया था। परन्तु

वह, बदले में, उस व्यक्ति को क्षमा नहीं करता है जो उसके 1800 रुपये की छोटी राशि का ऋणी था।

रोचक बात तो यह है कि, दोनों व्यक्तियों ने एक ही बात की विनती की थी—थोड़ा और समय, ऋण से सम्पूर्ण मुक्ति नहीं। अत्यधिक विशाल उधार लेने वाले व्यक्ति के लिए और समय को माँगना हास्यपद था, क्योंकि आज के भत्ता मानकों के अनुसार भी वह ऋण राशि एक अत्यन्त विशाल आंकड़ा था। उस समय की दैनिक मजदूरी लगभग अठारह रुपये ही थी। छोटे ऋण वाला व्यक्ति तीन महीनों में अपना ऋण सम्भवतः चुका सकता था। थोड़े और समय के लिए उसका अनुरोध अकारण नहीं था, परन्तु उसके ऋणदाता ने, जो क्षमा उसने स्वयं प्राप्त की थी उसे व्यक्त करने के विपरीत, उसे सताना प्रारम्भ कर दिया। मुख्य बात स्पष्ट होनी चाहिए। एक-दूसरे के प्रति हमारे अपराध और लोगों द्वारा हमारे प्रति किए गए अपराध अठारह सौ रुपए के ऋण के समान हैं, जबकि हमने प्रभु परमेश्वर के विरुद्ध जो असंख्य अपराध किए हैं, वे 10 करोड़ रुपए के ऋण के समान हैं।

जोनाथन एडवर्ड्स, ने अपने प्रसिद्ध उपदेश “पापियों के विनाश में परमेश्वर का न्याय” में कहा कि किसी भी पाप का कम या अधिक घृणित होना, तो इस बात पर निर्भर करता है कि हमने किसके सम्मान और महिमा को ठेस पहुँचाया है। क्योंकि परमेश्वर असीमित सम्मान, असीमित महिमा, और असीमित पवित्रता का है, इसलिए बहुत छोटे से भी पाप का परिणाम असीमित होता है। यह छोटे से प्रतीत होने वाले पाप “वैश्विक राजद्रोह” से कम नहीं हैं, जब उन्हें उस महान राजा के प्रकाश में देखा जाता है जिसके

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

विरुद्ध हमने पाप किया है। हम ऐसे ऋणी हैं जो भुगतान नहीं कर सकते, फिर भी हमें ऋणदाता के कारागार के भय से मुक्त कर दिया गया है। यह परमेश्वर का अपमान है जब हम क्षमा और अनुग्रह को उन से रोकते हैं जो हमसे यह मांगते हैं, जबकि हम स्वयं क्षमा और अनुग्रह से उद्धार पाने का दावा करते हैं।

यहाँ पर विचार करने के लिए एक और महत्वपूर्ण बिन्दु है। हमारे क्षमा प्रदान के कार्य में भी कोई योग्यता नहीं है। हम परमेश्वर के सम्मुख स्वयं की प्रशंसा नहीं कर सकते हैं और क्षमा की माँग नहीं कर सकते हैं केवल इसलिए कि हमने किसी और पर क्षमा दिखाई है। किसी भी रीति से हमारे द्वारा दी गयी क्षमा परमेश्वर को हमारे प्रति बाध्य नहीं करती है। लूका 17:10 स्पष्ट रूप से बताता है कि हमारे सबसे अच्छे कामों में भी कोई योग्यता नहीं है: “तुम भी जब उन सब आज्ञाओं का पालन कर लो जो तुम्हें दी गई हैं तो कहो, ‘हम अयोग्य दास हैं; हमने तो केवल वही किया है जो हमें करना चाहिए था।’”

हम अपनी आज्ञाकारिता के लिए कुछ भी पाने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि आज्ञाकारिता—यहाँ तक कि सिद्धता के स्तर तक भी—परमेश्वर के राज्य के नागरिक के लिए एक न्यूनतम आवश्यकता है। उस कर्तव्य को करने के पश्चात, केवल दण्ड न प्राप्त करने की बात की माँग कर सकते हैं, परन्तु निश्चित रूप से किसी पुरस्कार की नहीं, क्योंकि हमने केवल वही किया होगा जिसकी अपेक्षा की गई थी। आज्ञाकारिता कभी भी सेवा के समान योग्य नहीं होती जो कि “कर्तव्य की पुकार से ऊपर तथा परे होती है।” हालाँकि, हमने आज्ञा नहीं मानी है; हमने गम्भीर रूप से पाप किया है। इसलिए,

प्रार्थना का नमूना

हम केवल इस स्थिति में हैं कि हम स्वयं को परमेश्वर के सम्मुख गिरा कर दण्डवत करें और उसकी क्षमा के लिए भीख मांगें। परन्तु यदि हम ऐसा करते हैं, तो हमें स्वयं उस क्षमा को दिखाने के लिए तत्पर रहना चाहिए; अन्यथा मसीह में हमारी स्थिति अनिश्चित रूप से लटकी हुई है। यीशु जो कह रहा है उसकी मूल बात यह है कि: “क्षमा प्राप्त लोग दूसरे लोगों को क्षमा करते हैं।” हम उसके जीवन और स्वभाव को धारण करने का दावा करने का साहस न करें और साथ ही उस जीवन और स्वभाव को प्रदर्शन करने में विफल भी होते रहें।

इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए, यदि परमेश्वर ने किसी को क्षमा किया है, तो क्या हमें उससे कुछ कम करना चाहिए? यह सोचना अविश्वसनीय होगा कि हम, जो इतने दोषी हैं, किसी ऐसे व्यक्ति को क्षमा करने से नकार दें जिसे परमेश्वर द्वारा क्षमा प्रदान किया गया है, जो कि पूरी तरह से निर्दोष है। हमें उस बात को दर्शाते हुए दूसरों के लिए अनुग्रह का दर्पण होना चाहिए, जिसे हमने स्वयं प्राप्त किया है। यह व्यावहारिक रीति से सुनहरे नियम को लागू करता है।

क्षमा व्यक्तिगत नहीं, किन्तु एक सामाजिक विषय है। ख्रीष्ट की देह उन लोगों का एक समूह है जो प्रतिदिन क्षमा के सन्दर्भ में जीते हैं। वह तथ्य जो हमें पृथक् करता है वह यह है कि हम क्षमा प्राप्त पापी हैं। यीशु याचिका के न केवल क्षैतिज परन्तु लम्बवत तत्वों की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। हमें प्रतिदिन अपने पापों की क्षमा के लिए प्रार्थना करनी है।

कुछ लोग इस बिन्दु पर यह पूछ सकते हैं कि, “यदि परमेश्वर ने हमें पहले ही क्षमा कर दिया है, तो हमें क्षमा क्यों माँगनी चाहिए? क्या ऐसी वस्तु

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

को माँगना भूल नहीं है जिसे उसने हमें पहले ही प्रदान कर दिया है?” इस प्रकार के प्रश्नों का अन्तिम उत्तर सदैव एक ही होता है। हम ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि परमेश्वर इसकी आज्ञा देता है। पहला यूहन्ना 1:9 बताता है कि निरन्तर क्षमा माँगना एक मसीही का चिन्ह है। यूनानी भाषा में क्रिया का जो काल है वह एक चल रही प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। क्षमा की अभिलाषा मसीहियों को अन्य लोगों से अलग करती है। एक अविश्वासी अपने पापमयता को तर्कसंगत ठहराता है, परन्तु मसीही स्वयं की अयोग्यता के प्रति सन्वेदनशील होता है। पापों का अंगीकार उसके प्रार्थना समय के एक महत्वपूर्ण भाग को लेता है।

व्यक्तिगत रूप से, मुझे परमेश्वर से यह माँगना थोड़ा भयावह लगता है कि वह हमें उस स्तर तक क्षमा करे जितना कि हम दूसरों को क्षमा करते हैं। यह लगभग परमेश्वर से न्याय माँगने के जैसा है। मैं अपने छात्रों को चेतावनी देता था: “परमेश्वर से न्याय मत माँगो। हो सकता है कि आपको वह प्राप्त हो जाए।” यदि वास्तव में, परमेश्वर ने मुझे दूसरों को क्षमा करने की मेरी इच्छा के सटीक अनुपात अनुसार क्षमा किया होता, तो मैं गहरे संकट में पड़ जाऊँगा।

दूसरों को क्षमा करने की आज्ञा, जिस प्रकार से हमें क्षमा किया गया है स्वयं-को-क्षमा करने के विषय में भी लागू होती है। हमारे पास परमेश्वर की प्रतिज्ञा है कि जब हम उससे अपने पापों का अंगीकार करते हैं, तो वह हमें क्षमा कर देगा। खेद की बात है कि, हम सदैव उस प्रतिज्ञा पर विश्वास नहीं करते हैं। पाप-अंगीकार के लिए दो स्तरों पर नम्रता की आवश्यकता होती है। पहला स्तर तो दोष की वास्तविक स्वीकारोक्ति है; दूसरा स्तर क्षमा की विनम्र स्वीकृति है।

एक बार किसी दोष-बोध की समस्या से व्याकुल होकर एक स्त्री ने मेरे

पास आकर कहा: “मैंने परमेश्वर से इस पाप के लिए बारम्बार क्षमा माँगी है, परन्तु मैं अभी भी दोष-बोध का अनुभव करती हूँ। मैं क्या कर सकती हूँ?” इस स्थिति में एक ही पाप की कई पुनरावृत्ति सम्मिलित नहीं थी, परन्तु एक बार किए गए पाप का कई बार पाप-अंगीकार था।

मैंने उत्तर दिया कि “आपको पुनः प्रार्थना करनी चाहिए और परमेश्वर से आपको क्षमा करने के लिए विनती करनी चाहिए।” उसकी आँखों में अधीर निराशा दिखने लगी। “परन्तु मैं ऐसा कर चुकी हूँ!” उसने कहा। “मैंने परमेश्वर से बारम्बार क्षमा करने के लिए विनती की है। उससे पुनः विनती करने से क्या भला होगा?”

मैंने अपने उत्तर में, उसके मस्तिष्क पर बल देते हुए कहा: “मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूँ कि आप परमेश्वर से माँगें कि वह आपको उस पाप के लिए क्षमा करे। मैं आपसे कह रहा हूँ कि आप अपने अहंकार के लिए क्षमा माँगें।”

उस स्त्री को विश्वास ही नहीं हुआ। “अहंकार? कैसा अहंकार?” वह यह मान रही थी कि क्षमा प्राप्ति हेतु उसका बारम्बार अनुनय विनय उसकी विनम्रता का निश्चित प्रमाण था। वह अपने पाप को कारण इतना टूटी हुई थी कि उसे लगा कि इसके लिए उसे सर्वदा पश्चाताप करना होगा। उसने सोचा कि उसका पाप इतना बड़ा है कि एक बार के पश्चाताप के द्वारा क्षमा प्राप्त नहीं होगी। अन्य लोगों को अनुग्रह प्राप्त करने दो; वह तो अपने पाप के लिए कष्ट उठाने जा रही थी भले ही परमेश्वर कितना भी दयालु क्यों न हो। घमण्ड ने इस स्त्री की क्षमा स्वीकृति में एक बाधा निर्धारित कर दी थी। जब परमेश्वर हमसे प्रतिज्ञा करता है कि वह हमें क्षमा करेगा, तो हम उसकी सत्यनिष्ठा का अपमान करते हैं जब हम उसे स्वीकारने से नकारते हैं। परमेश्वर द्वारा क्षमा कर दिये जाने के पश्चात स्वयं को क्षमा करना हमारा एक कर्तव्य है और साथ ही साथ एक विशेषाधिकार भी है।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

हमें परीक्षा (प्रलोभन) में न ला,

परन्तु बुराई से बचा

पहली झलक में, प्रभु की प्रार्थना का यह खण्ड दो भिन्न याचिकाएं लगती हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। यह पुराने नियम में उपयोग किए गए समानांतरता के साहित्यिक रूप का अनुसरण करता है—एक ही बात को कहने के दो भिन्न ढंग। यीशु यह सुझाव नहीं दे रहा है कि यदि हम उससे याचना नहीं करेंगे तो परमेश्वर बुराई के द्वारा हमको प्रलोभित करेगा। याकूब, 1:13 में विशेष रूप से कहता है कि परमेश्वर किसी की भी परीक्षा (प्रलोभन) नहीं लेता है। परमेश्वर परख सकता है, परन्तु वह कभी भी बुराई के लिए परीक्षा (प्रलोभन) नहीं करता है। परख विकास के लिए है; परीक्षा (प्रलोभन) बुराई के लिए है।

सभी प्रलोभन शैतान की ओर से नहीं है, क्योंकि याकूब यह भी कहता है कि हम स्वयं की अभिलाषाओं से परीक्षा में पड़ते हैं। मनुष्य के हृदय की भीतर स्वाभाविक बुराई शैतान की सहायता के बिना मनुष्य को लुभाने में सक्षम है।

प्रलोभन से बचने का निवेदन और बुराई से छुटकारे के लिए याचिका एक ही समान है। हिन्दी की बाइबल में इस खण्ड का अनुवाद उत्तम नहीं है, क्योंकि यीशु जिस बुराई के विषय में बोलता है, वह सामान्य अर्थ में बुराई नहीं है। यूनानी में, जिस शब्द का अनुवाद “बुराई” है वह नपुंसक लिंग है; प्रभु की प्रार्थना के इस भाग में, इस शब्द का लिंग पुल्लिंग है। यीशु कह रहा था कि हमें पिता से माँगना चाहिए कि वह हमको दुष्ट जन से बचाए, उन आक्रमणों से जिन्हें लूथर ने कहा “शैतान के अनियंत्रित प्रहार”, वह शत्रु जो इस संसार में ख्रीष्ट के कार्य को नष्ट कर देगा।

प्रार्थना का नमूना

यीशु हमसे कह रहा था कि हम पिता से अपने चारों ओर एक बाड़ा बनाने के लिए निवेदन करें। यह याचिका इस संसार के परीक्षाओं से बचने के लिए नहीं बनाई गई है, किन्तु हमें शैतान के सीधे एवं खुले आक्रमणों से बचाने के लिए बनाई गई है। अपनी “महायाजकीय प्रार्थना” में यीशु ने पिता से अपने चेलों को संसार से बाहर निकालने के लिए नहीं कहा, बल्कि उन्हें “दुष्ट जन से बचाए रखने के लिए कहा [पोनेरोस-poneros]” (यूहन्ना 17:15)।

इस याचिका में, हम परमेश्वर के छुटकारे वाली उपस्थिति की माँग करते हैं। उस उपस्थिति के बिना, हम शत्रु के लिए सरल शिकार हैं। पतरस के विषय में सोचिए, जब उसने अपनी प्रतिबद्धता की सीमा, अपने प्रेम और भक्ति की गहराई, और अपनी विश्वासयोग्यता की तीव्रता के विषय में यीशु को अति उत्साह के साथ बताना समाप्त किया। उसे देखते हुए और उसके इनकार की भविष्यवाणी करते हुए, यीशु ने कहा, “शमौन, शमौन, देख, शैतान ने तुम लोगों को गेहूँ के समान फटकने के लिए आज्ञा मांग ली है, परन्तु मैंने तेरे लिए प्रार्थना की है कि तेरा विश्वास विफल न हो जाए” (लूका 22:31-32)। दूसरे शब्दों में, यीशु ने पतरस से कहा कि वह अपने बल पर शैतान के हाथों का खिलौना होता। यदि ख्रीष्ट ने पतरस की ओर से मध्यस्थता की प्रार्थना नहीं की होती, तो पतरस खो गया होता; उसका विश्वास विफल हो जाता।

अब न केवल हमारे पास यीशु है कि वह हमें शत्रु से बचाने के लिए मध्यस्थता करे, किन्तु हमें स्वयं शत्रु के हाथ से सुरक्षित रखने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए।

इन छह याचिकाओं में, यीशु ने हमारे प्रार्थना वाले जीवन के लिए एक नमूना और प्राथमिकताओं को रेखांकित किया। प्रभु की प्रार्थना की पारम्परिक

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

समाप्ति—“क्योंकि राज्य और पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही है।
आमीन”—को सर्वश्रेष्ठ पाण्डुलिपियों में नहीं पाया जाता है। यह पूरी सम्भावना
है कि, यह मूल लेख में नहीं था, परन्तु आरम्भिक कलीसिया में प्रार्थनाओं के
लिए एक सामान्य उपसंहार था। हालाँकि, यह एक उचित और सत्यपूर्ण अन्त
है। यह प्रार्थना के आरम्भ की ओर फिर से ले जाते हुए, उसके लिए प्रशंसा
गीत गाता है जो हमारी याचिकाओं को सुनता है।

अध्याय चार

प्रार्थना का अभ्यास

प्रभु की प्रार्थना चेलों के उस अनुरोध के प्रतिउत्तर में कलीसिया को दी गई थी कि यीशु उन्हें प्रार्थना करना सिखाए। प्रभु की प्रार्थना के उत्कृष्ट उदाहरण में, हम प्रार्थना की प्राथमिकताओं को देखते हैं। हम प्रार्थना के एक नमूने को भी पाते हैं, एक सरल प्रवाह जो कि आराधना के साथ आरम्भ होती है और अन्त में याचिका और निवेदन की ओर बढ़ती है।

यह अक्षरबद्ध (acrostic) शब्द “ए-सी-टी-एस” (“A-C-T-S”) प्रार्थना के लिए एक नमूने के रूप में उपयोगी है। इस अक्षरबद्ध शब्द में प्रत्येक अक्षर प्रभावी प्रार्थना के एक महत्वपूर्ण तत्व का प्रतिनिधित्व करता है:

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

ए — एडोरेशन (उपासना)

सी — कन्फेशन (पाप-अंगीकार)

टी — थैंक्स (धन्यवाद)

एस — सप्लीकेशन (निवेदन)

सम्पूर्ण अक्षरबद्ध प्रार्थना के ऊर्जावान आयाम का सुझाव देता है। प्रार्थना एक क्रिया है। जबकि इसे शान्तिपूर्वक शान्त भाव में व्यक्त किया जा सकता है, फिर भी, यह एक क्रिया है। जब हम प्रार्थना करते हैं, हम निष्क्रिय अवलोकन करने वाले या निष्पक्ष, विरक्त दर्शक नहीं हैं। प्रार्थना के अभ्यास में ऊर्जा व्यय होती है।

बाइबल हमें बताती है कि “एक धर्मी जन की प्रभावशाली (उत्कट) प्रार्थना से बहुत कुछ हो सकता है” (याकूब 5:16)। गतसमनी में यीशु की पीड़ा उत्कटता द्वारा चिह्नित थी, जहाँ उसका पसीना भूमि पर लहू की बूंदों के रूप में गिरा। उत्कटता पेनीएल में पूरी रात स्वर्गदूत के साथ याकूब की कुशती का वर्णन करती है। प्रार्थना प्रबल मनोभाव का एक अभ्यास है, उदासीनता का नहीं।

यीशु ने एक दृढ़ाग्रही विधवा का दृष्टान्त बताया जो अपनी समस्या को एक अन्यायपूर्ण न्यायाधीश के पास ले जाती है। न्यायाधीश, एक अधर्मी व्यक्ति था, जिसमें न मनुष्य और न ही परमेश्वर के लिए सम्मान था, उसने विधवा के निवेदन को सुना। वह अचानक उभर उठे तरस द्वारा प्रभावित नहीं हुआ, परन्तु इसके विपरीत वह उसकी बारम्बार की विनितियों से थक गया था। संक्षेप में, महिला एक समस्या बन गई, और अनवरत उसके पीछे पड़ जाने के द्वारा उसने न्यायाधीश को कार्यवाही करने के लिए बाध्य किया।

1 अंग्रेजी में FERVENT शब्द के लिए हमने उत्कट शब्द का उपयोग किया है जो कि उत्साह, तीव्रता, तीक्ष्णता अथवा लगन को दर्शाता है।

दृष्टान्त का बिन्दु यह नहीं है कि परमेश्वर हमारी आवश्यकताओं के प्रति उदासीन है और यदि हमारी सुनवाई होनी है तो उसके पीछे पड़ जाना चाहिए। यहाँ प्रश्न अधर्मी न्यायाधीश और परमेश्वर के बीच समानान्तरता का नहीं है जो कि पूरी रीति से धर्मी न्यायाधीश है। यहाँ विपरीत बात दर्शायी जा रही है। यीशु प्रायः इस प्रधान विचार “इससे और अधिक” को अपने दृष्टान्तों में उपयोग करता है। यहाँ वह कहता है, “तो क्या परमेश्वर अपने चुने हुएों का न्याय न करेगा जो रात-दिन उसे पुकारते रहते हैं?” (लूका 18:7)। तुलना/विपरीत की मुख्य बात यह है: यदि एक अन्यायी मानव न्यायाधीश एक उत्कट महिला की याचिका पर सुनवाई करेगा, तो हमारा धर्मी स्वर्गीय न्यायाधीश इससे और अधिक क्यों न हमारी याचिकाओं को सुनेगा?

उस दृढ़ाग्रही महिला की तुलना उन सन्तों से की जाती है जो दिन-रात पुकारते हैं। राजा दाऊद की नाई, जिसका तकिया उसके आँसुओं से पूरी तरह से भीगा हुआ था, सन्त लोग परमेश्वर के पास वास्तविक भावना के साथ आते हैं, यहाँ तक कि आँसुओं के साथ भी।

उत्कटता एक सक्रिय प्रार्थना का एक उपयुक्त तत्व है। उन्माद नहीं है। दोनों के मध्य में एक सूक्ष्म रेखा उपस्थित है। दोनों में भावावेश पाया जाता है; दोनों भावनाओं से भरे हुए हैं। दो बिन्दुओं पर उत्कटता उन्माद में परिवर्तित हो जाती है: मानसिक तथा भावनात्मक। उत्कटता उन्माद तब बन जाती है जब मस्तिष्क सोचना बन्द कर देता है और भावनाएँ नियंत्रण से बाहर हो जाती हैं। उन्माद वाली प्रार्थना नाचने वाले पीर की नाई असंबद्धता में पहुंच जाती है, और परमेश्वर को सम्मान नहीं मिलता है।

उन्माद, जो उत्कटता का कृत्रिम प्रतिरूप है, ईश्वरीय उत्कटता को उत्पन्न

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

करने का एक सोचा समझा प्रयत्न है। जो लोग जानबूझकर लोगों की भावनाओं को धूर्तता से प्रभावित करते हैं उनको यहाँ चेतावनी दी जाती है। वास्तविक आत्मिक उत्कटता के विषय में कुछ पवित्र बात है, कुछ सम्प्रभुता की बात है, जिसे कृत्रिम रीति से निर्मित नहीं किया जा सकता है। उन्माद और उत्कटता में भ्रमित होना सरल है, परन्तु यह भ्रम घातक है।

उपासना

जैसे कि प्रभु की प्रार्थना की रीति है, उपासना के साथ प्रार्थना का आरम्भ करना ही सबसे उपयुक्त ढंग है। दुःख की बात है, हम अधिकांश रीति से अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं के द्वारा प्रार्थना करने के लिए प्रेरित होते हैं। हम परमेश्वर के पास तब जाते हैं जब हमें उससे कुछ चाहिए होता है। हम अपने अनुरोधों का वर्णन करने और अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने की (जो कि परमेश्वर पहले से ही जानता है) इतनी हड़बड़ी में रहते हैं कि हम उपासना को पूर्ण रूप से अनदेखा कर देते हैं या फिर केवल नाम मात्र के लिए इसे जल्दी में करते हैं।

उपासना को हटाना मानो प्रार्थना के हृदय को काट कर बाहर निकालना है। निवेदन में उत्कटता का होना तो एक बात है, विशेष रूप से युद्ध के समय खाई में प्रार्थना करते समय; किन्तु उपासना में उत्कटता का होना वह तो दूसरी बात है। महान सन्तों की प्रार्थनाएं, कलीसियाई इतिहास के प्रार्थना योद्धा, परमेश्वर के प्रति अपनी उत्कट उपासना से चिह्नित किये जाते हैं।

परमेश्वर न होने दे कि हम कभी मसीह की शिक्षाओं की आलोचना करें, परन्तु मैं अवश्य अंगीकार करूँगा कि प्रार्थना के विषय में चेलों के अनुरोध के प्रति यीशु की प्रतिक्रिया से मैं थोड़ा आश्चर्यचकित हुआ था। जब उन्होंने कहा,

“हमें प्रार्थना करना सिखा,” तो मैंने उसके होठों से एक भिन्न प्रतिक्रिया की अपेक्षा की होती इसके विपरीत प्रभु की प्रार्थना के माध्यम से जो उत्तर उसने दिया। मैंने कुछ इस प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा की होती: “क्या आप सीखना चाहते हैं कि प्रार्थना कैसे करें? भजनों को पढ़िए।”

मुझे आश्चर्य है कि यीशु ने चेलों को भजनों का उल्लेख नहीं दिया। वहाँ हम न केवल दाऊद के हृदय को उजागर होते हुए, परन्तु हमारे अनुसरण करने के लिए उपासना के विभिन्न नमूनों से भरे हुए एक ईश्वरीय प्रेरित भण्डार को भी पाते हैं।

उपासना को व्यक्त करने में हमारी हिचकिचाहट और निर्बलता के दो मूल कारण हो सकते हैं। पहला है उपयुक्त शब्दावली का हमारा स्पष्ट अभाव। जब उपासना की बात आती है तो हम व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं। वह एडगर एलन पो ही थे, जिन्होंने कहा था कि निर्देश का संचार करने के लिए कविता की तुलना में गद्य एक अधिक उपयुक्त वाहन है। कविता का उद्देश्य प्राण को उच्च ऊँचाइयों तक पहुँचाना है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भजनों को काव्यात्मक रूप में लिखा गया था। यहाँ प्राण द्वारा परमेश्वर की प्रशंसा की सेवा में मौखिक अभिव्यक्ति उत्कृष्ट ऊँचाइयों को पहुँचा जाती है।

करिश्माई (*charismatic*) आन्दोलन में कई लोगों ने घोषणा की है कि अन्य भाषा के वरदान का पीछा करने के मुख्य कारणों में से एक यह है कि, एक विशेष प्रार्थना भाषा के माध्यम से कंगाल शब्दावली के अभाव पर विजय पाना या उसे दूर करने की एक तीव्र अभिलाषा। लोग प्रायः सोचते हैं कि उनकी स्वयं की भाषा उपासना को व्यक्त करने के लिए अपर्याप्त है। उन्हीं

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

उबाऊ, थके हुए शब्दों का उपयोग करने से अपर्याप्तता की यह भावना हताशा को उत्पन्न करती है। इसी के जैसे विचार को चार्ल्स वेस्ली ने अपने उपासना गीत “ओ फॉर ए थाउजेंड टंम्स टू सिंग” (काश कि एक हज़ार जीभें गीत को गातीं) में व्यक्त किया है। उपासना गीत दुखड़ा रोता है कि प्रशंसा करने के लिए केवल एक ही जीभ पर सीमित होना एक विलापमय बाधा है, जिससे मुक्ति केवल नौ सौ निन्यानवे अन्य जीभों के जुड़ने के पश्चात ही मिलेगी।

भजन संहिता सरल परन्तु शक्तिशाली शब्दावली में लिखे गए थे जिनके माध्यम से अनेक लेखकों के हृदयों ने बिना मस्तिष्क की उपेक्षा किए परमेश्वर के प्रति आदर व्यक्त किया। अपने मुखों को खोलकर, भजनकारों ने स्तुति को अभिव्यक्त किया। यह बात तो निश्चित है कि वह स्तुति पवित्र आत्मा के प्रेरणा के अन्तर्गत दी गई थी, परन्तु उन व्यक्तियों के द्वारा जिनके मन परमेश्वर की बातों से ओत प्रोत थे।

प्रशंसा को व्यक्त करने के लिए एक अन्य बड़ी बाधा अज्ञानता है। हम सीमित शब्दावली से उतना अधिक पीड़ित नहीं हैं जितना कि उसके विषय में एक सीमित समझ से, जिसकी हम उपासना कर रहे हैं। हमारी आराधना परमेश्वर के ज्ञान के अभाव से भी पीड़ित है।

किसी प्रेम पीड़ित किशोर पर विचार कीजिए जो अपनी प्रेमिका को कक्षा के समय प्रेम-पत्र लिखता है। वह युवा संकोची और कम बोलने वाला हो सकता है, परन्तु उसे एक कलम और उसके प्रेम-प्रसंग के विषय पर चिंतन करने के लिए समय दीजिए, और यकायक वह एक और महान कवि बन जाएगा। ओह, हो सकता है यह प्रेम-पत्र अतिभावुक और साहित्यिक दृष्टिकोण

से उतना परिष्कृत न हो, किन्तु उसमें शब्दों का कोई अभाव नहीं है। वह युवक प्रेम में है। उसका हृदय उसके कलम को चलाता है।

कैसे कोई व्यक्ति एक अज्ञात परमेश्वर को प्रेम पत्रों को लिखता है? कैसे एक अस्पष्ट, अज्ञात सर्वोच्च प्राणी के लिए होंठ प्रशंसा के शब्दों को बनाते हैं? परमेश्वर, कभी न समाप्त होने वाले व्यक्तिगत इतिहास के साथ एक व्यक्ति है। उसने स्वयं को हम पर न केवल प्रकृति के प्रतापी नाट्यशाला में प्रकट किया है, परन्तु पवित्र शास्त्र के पत्रों में भी। यदि हम अपने मन को उसके वचन से भरते हैं, तो हमारा अव्यक्त हकलाना अर्थपूर्ण प्रशंसा के सम्पन्न नमूनों में परिवर्तित हो जाएगा। अपने आप को भजनों में सराबोर करने के द्वारा, हम न केवल इस विषय में कि प्रशंसा कैसे करें अंतर्दृष्टि प्राप्त करेंगे, परन्तु उसके विषय में अपनी समझ को भी बढ़ाएंगे जिसकी हम प्रशंसा कर रहे हैं।

हमें उसकी उपासना क्यों करनी चाहिए? मनुष्य होने के नाते ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। हमें पृथ्वी को परमेश्वर की महिमा से भरने के लिए बुलाया गया है। हमें उसकी महिमा को प्रतिबिंबित करने के लिए उसके स्वरूप में सृजा गया था; हमारा मुख्य कार्य प्रभु की बढ़ाई करना है। इसी प्रकार से हमें उसकी उपासना करनी है, परन्तु उसकी चापलूसी नहीं करनी है, मानो कि हम अपने निवेदनों के लिए “उसे तैयार कर रहे हैं।” हम ध्यान दें कि स्वर्ग में स्वर्गदूतों का इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि वे परमेश्वर के सिंहासन को चारों ओर प्रशंसा और उपासना से घेरे हुए हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से उपासना हमारे लिए क्यों इतनी महत्वपूर्ण है? क्योंकि एक मसीही का सम्पूर्ण जीवन—जिसे आज्ञाकारिता और सेवा का जीवन होना

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

चाहिए—प्रेरणा प्राप्त और समृद्ध होता है, जब परमेश्वर की पवित्रता और गरिमा हमारे मस्तिष्कों में अंकित होती है। इससे पूर्व कि मैं किसी के लिए कुछ कठिन करने के लिए प्रेरित हो सकूँ, मेरे पास उस व्यक्ति के लिए एक निश्चित मात्रा में सम्मान होना चाहिए। जब कोई मुझसे कहता है कि संसार में बाहर जाओ और सताव और क्रुद्ध तथा विरोधी लोगों की शत्रुता सहो, तो मुझे उस व्यक्ति का गहराई से सम्मान करना होगा। केवल तभी यह कार्य सरल होगा।

जब हम अपनी प्रार्थनाएँ उपासना के साथ आरम्भ करते हैं, तो हम पाप-अंगीकार में, धन्यवाद में, और निवेदन में परमेश्वर के पास आने के लिए मनोभाव की तैयारी कर रहे हैं। इब्रानियों 4:16 हमें बताता है कि हमें साहस के साथ महा पवित्र स्थान में प्रवेश करना है, क्योंकि क्रूस के द्वारा पर्दा हटा दिया गया है। स्वर्ग के द्वार पर जो तलवार स्वर्गदूत धारण किये हुए था उसको हटा दिया गया है। ख्रीष्ट ने हमें पिता के पास पहुँच प्रदान कर दी है। फिर भी यदि हम कलीसिया के इतिहास को देखें, तो लोगों ने यह सोचकर एक सम्मानजनक दूरी बनाए रखी है, कि परमेश्वर उनसे अलग-थलग बना हुआ है। प्रार्थना इतनी औपचारिक हो गई कि कलीसिया और उसके लोगों ने उसी तीव्रता के साथ विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया की है।

आज हमारे पास “संवादी प्रार्थना” है। परमेश्वर से हमारी बातचीत कुछ इस रीति से होती है: “ओह, नमस्ते, परमेश्वर। कैसा चल रहा है? मेरे लिए आज बहुत अच्छा नहीं रहा है, परन्तु, ओह, आप जानते हैं, आप और मैं, परमेश्वर, हम किसी भी प्रकार से इसे ठीक कर लेंगे, है ना?” निसन्देह यह

अनावश्यक प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु यह उस प्रकार की अनौपचारिकता जान पड़ती है जो कि अवमानना को उत्पन्न करती है। कृत्रिमता को दूर करने के लिए इसको बनाया गया था, किन्तु इसने सबसे बुरे प्रकार की कृत्रिमता को उत्पन्न कर दिया है। यह कल्पना करना कठिन है कि किसी भी सृजित प्राणी में परमेश्वर से उसकी तत्काल उपस्थिति में इस प्रकार से बात करने का दुस्साहस होगा।

परमेश्वर ने हमें बिना झिझक के उसकी उपस्थिति में आने के लिए आमंत्रित किया है, परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम अंततः परमेश्वर ही के सम्मुख आ रहे हैं। जब स्वयं प्रभु परमेश्वर सर्वशक्तिमान से सामना होगा, तो फिर कौन इस रीति से बात करेगा जैसे कि बेसबॉल खेल के मैदान में अपने मित्र से? हम साहस के साथ आ सकते हैं, परन्तु कभी भी अभिमान के साथ नहीं, कभी भी धृष्टता में नहीं, कभी भी बिना गम्भीरता के नहीं, मानो जैसे कि हम किसी सहकर्मी से व्यवहार कर रहे हों।

जब हम अपनी प्रार्थना को उपासना और स्तुति के साथ आरम्भ करते हैं, तो हम उस जन को स्वीकार करते हैं जिससे हम बात कर रहे हैं। व्याकरण का सिद्ध होना आवश्यक नहीं है, न ही शब्दों को उत्कृष्ट और वाक्पटु होने की आवश्यकता है, परन्तु परमेश्वर जिस उचित आदर और सम्मान के योग्य है उन्हें उसको प्रतिबिम्बित करना चाहिए। एक अर्थ में उपासना हमें उस उचित प्रणाली में ले जाती है जिसके द्वारा हम अपने पापों का अंगीकार करते हैं, धन्यवाद देते हैं, और अपने निवेदन प्रस्तुत करते हैं।

कई नवीन पुस्तकें हमें विश्वास दिलाना चाहेंगी कि हमें केवल कुछ निश्चित चरणों का पालन करना है और जो कुछ भी हम मांगते हैं परमेश्वर हमें वह देगा। एक प्रकार से वे लेखक कहते हैं कि, “इस प्रक्रिया का पालन करें या इन विशिष्ट शब्दों का उपयोग करें और जान लें कि निश्चित रूप से परमेश्वर

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

आपके अनुरोधों को पूरा करेगा। “वह तो प्रार्थना नहीं है; वह जादू है। वह तो विश्वास नहीं परन्तु अस्थविश्वास है। वे हथकण्डे हैं जिनकी मनसा सम्प्रभु परमेश्वर को धूर्तता से चलाने की है। परन्तु जो इस प्रकार से प्रार्थना करता है वह भूल जाता है कि वह किस जन से बात कर रहा है। सम्प्रभु परमेश्वर को धूर्तता के साथ चलाया नहीं जा सकता है, क्योंकि वह उन सभी के हृदयों को जानता है जो उससे प्रार्थना करते हैं। सच्ची प्रार्थना सर्वशक्तिमान परमेश्वर के प्रति विनम्र समर्पण और उपासना के मनोभाव को पहले से ही मानती है।

पाप-अंगीकार

उपासना व्यक्त करने के पश्चात्, हमें परमेश्वर के सम्मुख पाप-अंगीकार वाले हृदयों के साथ आना चाहिए। हमारे पास मसीह के सम्पूर्ण हुए कार्य से हटकर, परमेश्वर के सम्मुख आने का कोई अधिकार नहीं है। हम अपने आप में और अपने लिए कोई दावा नहीं कर सकते, कि परमेश्वर हमारी सुने। हमारे पास स्वयं में कोई अधिकार नहीं है कि उसकी उपस्थिति में आ सकें। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर इतना पवित्र है कि वह पाप को देख भी नहीं सकता है। परमेश्वर धर्मियों की प्रार्थनाओं से प्रसन्न होता है, परन्तु हम अपने दैनिक जीवन में बहुत धर्मी नहीं हैं। फिर भी, जिस परमेश्वर की हम सेवा करते हैं वह हमारे पाप के होते हुए भी हमें अपनी उपस्थिति में आमंत्रित करता है।

प्रभु की प्रार्थना के हमारे अध्ययन में, हमने पाप-अंगीकार के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों पर विचार किया था। जैसा कि आदर्श प्रार्थना संकेत करती है, पाप-अंगीकार परमेश्वर के साथ हमारी वार्तालाप का एक सामान्य भाग होना

चाहिए। पाप-अंगीकार कोई उथली बात नहीं है जिसे सम्पूर्ण वर्ष में केवल नियत समय और तिथियों पर ही करना है। पाप-अंगीकार एक मसीही के लिए एक दैनिक गतिविधि होनी चाहिए, जिसकी सम्पूर्ण जीवनयात्रा पश्चाताप की आत्मा से चिह्नित की जाती है। पाप-अंगीकार को दैनिक आधार पर किये जाने का मुख्य कारण है कि ईश्वरीय व्यवस्था के विरुद्ध में हमारे पाप दैनिक आधार पर किए जाते हैं। हम उन कार्यों को करते हैं जिन्हें हमें नहीं करना चाहिए और उन कार्यों को नहीं करते हैं जिन्हें परमेश्वर हमें करने की आज्ञा देता है। परमेश्वर के सम्मुख हमारा दैनिक ऋण बढ़ता चला जाता है। परिणाम स्वरूप, हमारी दैनिक प्रार्थनाओं में पाप-अंगीकार के वास्तविक कार्यों को सम्मिलित होना चाहिए।

यह कोई दुर्घटना नहीं है कि रोमन कैथोलिक कलीसिया ने कायाक्लेश¹ की विधि को एक धर्मविधि (*sacrament*) के स्तर तक उठा दिया है। क्योंकि कायाक्लेश की धर्मविधि प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधार के बवण्डर के मुख्य केन्द्र में थी, इसलिए प्रोटेस्टेन्ट लोगों के मध्य में कायाक्लेश के प्रति नकारात्मकता की एक तीखी प्रतिक्रिया थी। यह अत्याधिक प्रतिक्रिया की एक स्पष्ट घटना थी जिसमें अनुचित बात को हटाते समय उचित बात को भी त्याग दिया गया। धर्म सुधारकों ने पश्चाताप और अंगीकार को हटाने की मांग नहीं की थी, परन्तु कलीसिया की इन पद्धतियों में सुधार की माँग की थी।

रोमन कैथोलिक कायाक्लेश की धर्मविधि में कई तत्व सम्मिलित हैं: मौखिक अंगीकार, पादरियों द्वारा पापमुक्ति और “परमेश्वर को सन्तुष्ट करने के कार्य”। सन्तुष्टि के ये कार्य, नाम मात्र के कार्य हो सकते हैं जैसे कि कई बार

1 कायाक्लेश – यह अंग्रेजी शब्द Penance का अनुवाद है। काया का अर्थ है ‘मानव शरीर’ और क्लेश का अर्थ ‘कष्ट’। रोमन कैथोलिक चर्च का चौथा धर्मविधि जिसमें पिछले पापों, गलत कामों या आचरण के लिए पश्चाताप के रूप में शरीर को खैच्छिक कष्ट (आत्म-दण्ड) दिया जाता है।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

“जय मरियम” या “हमारे पिता” कहना या वे अधिक कठोर कायाक्लेश के कार्य हो सकते हैं। सन्तुष्टि के कार्यों को पश्चातापी मसीही के लिए “यथायोग्य लाभ” अर्जित करने के लिए बनाया गया है, ताकि परमेश्वर के लिए इसे यथोचित बनाया जाए जिससे कि वह धर्मी ठहराए जाने के अनुग्रह को पुनः स्थापित कर सकें।

कायाक्लेश की धर्मविधि का यह जो तीसरा पहलू था जिसने सोलहवीं शताब्दी में बहुत अधिक विवाद उत्पन्न किया। धर्मसुधारकों की दृष्टि में, सन्तुष्टि के हमारे कार्य, हमारे बदले में ख्रीष्ट द्वारा क्रूस पर किये गये पूर्ण हुए सन्तुष्टि के कार्य की पर्याप्तता और प्रभावोत्पादकता पर प्रश्न उठाते हैं। जिस “यथायोग्य लाभ” की बात रोम ने की थी उसने केवल विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाने वाले बाइबल के सिद्धांत को अस्पष्ट कर दिया था।

कायाक्लेश के विवाद पर, प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधारकों ने अंगीकार के महत्व को तिरस्कारा नहीं था, और उन्होंने स्वीकारा कि स्वयं के पापों को दूसरे व्यक्ति के सम्मुख अंगीकार करना बाइबल के अनुसार है। फिर भी, उन्होंने पादरी के सम्मुख अंगीकार करने की आवश्यकता को चुनौती दी।

पादरियों द्वारा पापमुक्ति का सिद्धांत विवाद का एक मुख्य विषय नहीं था। रोमन कैथोलिक कलीसिया ने सदैव सिखाया है कि पादरी के शब्द *टे अबसोलवो - Te absolvo* (“मैं तुम्हें पापमुक्त करता हूँ”) अपनी सामर्थ्य कलीसिया के लिए दिये गये यीशु की प्रतिज्ञा से प्राप्त करते हैं कि “और जो कुछ तू पृथ्वी पर बांधेगा वह स्वर्ग में बांधेगा, और जो कुछ तू पृथ्वी पर खोलेगा वह स्वर्ग में खुलेगा” (मत्ती 16:19), अर्थात् कलीसिया के प्रवक्ताओं को

अधिकार दिया गया था कि वे पश्चाताप करने वाले लोगों को मसीह की क्षमा उद्घोषित करें। रोमन कैथोलिक कलीसिया समझती है कि पापों को क्षमा करने की सामर्थ्य अन्ततः पादरी में नहीं होती है। पादरी ख्रीष्ट के लिए केवल एक प्रवक्ता है। व्यावहारिक रूप से, पादरी द्वारा पापमुक्ति में और प्रोटेस्टेन्ट सेवक की “क्षमा के आश्वासन” में बहुत कम अन्तर है, जो कि प्रत्येक रविवार को संसार भर में उपदेश मंच से दी जाती है।

प्रेरित यूहन्ना हमें बताता है, “यदि हम अपने पापों को मान लें तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है” (1 यूहन्ना 1:9)। यहाँ हम अपने अंगीकार किए हुए पापों के लिए क्षमा हेतु परमेश्वर की प्रतिज्ञा को पाते हैं। इस प्रतिज्ञा को अनदेखा करना या इसकी उपेक्षा करना मानो एक जोखिमपूर्ण मार्ग पर जाना है। परमेश्वर हमें आज्ञा देता है कि हम अपने पापों का अंगीकार करें और वह हमारे पापों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा करता है। यह बात तो स्पष्ट है कि हमें प्रतिदिन अपने पापों का अंगीकार करना चाहिए। अंगीकार का अर्थ क्या है और इसमें क्या सम्मिलित होता है, ये ऐसे विषय हैं जिन पर और चर्चा की आवश्यकता है।

हम दो प्रकार के पश्चाताप के बीच में अन्तर कर सकते हैं: *संघर्षण (attrition)* और *पछतावा (contrition)*। संघर्षण खोटा पश्चाताप है, जो हमें क्षमा के योग्य कभी भी नहीं बनाता है। यह उस बच्चे के पश्चाताप के समान है जो अपनी माँ की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए पकड़ा जाता है और वह पुकारता है, “मां, मां, मुझे क्षमा करें, कृपया मुझे दण्ड न दें।” संघर्षण वह पश्चाताप है जो वास्तव में केवल दण्ड के भय से प्रेरित होता है। पापी,

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

वास्तविक पछतावे के कारण नहीं परन्तु केवल नरक से सुरक्षित बाहर निकलने की इच्छा से परमेश्वर के सम्मुख अपने पाप का अंगीकार करता है।

सच्चा पश्चाताप पछतावे को दर्शाता है, अर्थात् परमेश्वर को अपमानित करने के कारण एक भक्तिपूर्ण पछतावा। यहाँ पापी अपने पाप पर विलाप करता है, प्रतिफल की हानि के कारण या न्याय के भय के कारण नहीं, परन्तु इसलिए क्योंकि उसने परमेश्वर के सम्मान को क्षति पहुंचाई है।

रोमन कैथोलिक कलीसिया जिस पाप-अंगीकार की प्रार्थना का उपयोग करती है उसे “पश्चाताप का कार्य” (द एक्ट ऑफ कॉन्ट्रिशन) कहा जाता है जो इस प्रकार के पश्चाताप को अभिव्यक्त करने के लिए है: “हे मेरे परमेश्वर, मैं हृदय से क्षमा चाहता हूँ कि मैंने आपको अपमानित किया। आपके न्यायपूर्ण दण्ड के कारण मैं अपने सभी पापों से घृणा करता हूँ, परन्तु सबसे अधिक बढ़कर क्योंकि मैंने आपको दुख पहुंचाया है, हे मेरे परमेश्वर, जो पूर्णतः भला है और मेरे सम्पूर्ण प्रेम के योग्य है। आपके अनुग्रह की सहायता से, मैं दृढ़ संकल्प लेता हूँ कि अब आगे को पाप न करूँ और पाप के निकट आने से भी बचूँ।”

यह प्रार्थना संघर्षण से कहीं आगे बढ़कर जाती है, मात्र दण्ड का भय नहीं, परन्तु परमेश्वर को अपमानित करने के कारण पवित्र खेद प्रकट करता है। ध्यान दीजिए कि पापी अंगीकार करता है कि परमेश्वर पूर्णतः भला है और हमारे प्रेम के योग्य हैं। यह अभिस्वीकृति स्वयं को धर्मी ठहराने के सभी प्रयासों को शान्त करा देती है।

इस प्रार्थना में पुनः पाप न करने के दृढ़ संकल्प का एक दृढ़ कथन, दुष्टता के कार्यों को त्यागने हेतु एक तत्परता और उसको कोई भी अवसर प्रदान न

करना सम्मिलित है। साथ ही ईश्वरीय करुणा और सहायता पर निर्भरता का एक विनम्र स्वीकरण भी इसमें सम्मिलित है।

निश्चित रूप से, यह सम्भव है कि इस प्रार्थना का उपयोग नाम मात्र के लिए किया जा सकता है, अर्थात् केवल इसे मुख से एक औपचारिक अभ्यास के रूप में बिना किसी हार्दिक पछतावे के साथ दोहराना। फिर भी, प्रार्थना के शब्द सच्चे पछतावे के तत्वों को व्यक्त करते हैं।

हमारी संस्कृति ने पछतावे के अधिकांश अर्थ को खो दिया है। लोगों के लिए यह समझना कठिन नहीं है कि वे पापी हैं, क्योंकि हजार में से एक भी यह नहीं कहेगा कि वह सिद्ध है। सामान्य प्रतिउत्तर यह होता है कि: “निश्चित रूप से, मैं एक पापी हूँ। तो क्या सब लोग भी नहीं हैं? कोई भी सिद्ध नहीं है।” कुछ ही लोग होंगे, यदि हैं भी तो, जो दावा करते हैं कि वे निर्दोष हैं, क्योंकि उन्होंने प्रत्येक परिस्थिति में सुनहरे नियम का पालन करते हुए, नैतिक स्थिरता का जीवन जिया है। कठिनाई अपने पाप की गम्भीरता को, तथा अपने कार्यों की चरम ईश्वरहीनता को स्वीकारने में होती है। क्योंकि हम सब पापी हैं और जानते हैं कि हम एक सामान्य दोष भावना के भागी हैं, तो हमारा अंगीकार प्रायः उथला होता है, तथा प्रायः सत्यनिष्ठा या नैतिकता की अत्यावश्यकता की भावना से चिह्नित नहीं होता है।

भजन 51, क्षमा के लिए एक पश्चातापी पापी की प्रार्थना है, जो राजा दाऊद द्वारा बतशेबा के साथ उसके व्यभिचार करने के पश्चात लिखी गई थी। दाऊद परमेश्वर के पास बहानों को लेकर नहीं पहुँचा। उसने परमेश्वर से उन परिस्थितियों पर विचार करने के लिए नहीं कहा जिसने उसके पाप को या उसके राजकीय ओहदे के अकेलेपन को उत्पन्न किया था। दाऊद ने परमेश्वर

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

की उपस्थिति में अपने पाप की गम्भीरता को कम करने का प्रयास नहीं किया। उसने तर्क देकर स्वयं का बचाव नहीं किया और स्वधर्मी ठहराए जाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया, जैसा कि अधिकतर दोषी लोगों की विशेषता होती है।

दाऊद ने कहा, “मैं अपने अपराधों को मानता हूँ, और मेरा पाप निरन्तर मेरे सम्मुख रहता है... तू अपनी बात में खरा, और न्याय करने में सच्चा ठहरता है”(पद 3-4)। दूसरे शब्दों में, दाऊद का यह मानना था कि परमेश्वर पूर्ण रूप से न्यायसंगत होता यदि वह उसे पूर्ण दण्ड के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देता। दाऊद ने वह दर्शाया जो परमेश्वर ने कहा था कि वह: एक टूटे और पिसे हुए हृदय को तुच्छ नहीं जानता।

दाऊद ने फिर परमेश्वर की कृपादृष्टि की पुनः स्थापना के लिए प्रार्थना की: “हे परमेश्वर, मुझे में शुद्ध हृदय उत्पन्न कर, और मेरे भीतर स्थिर आत्मा फिर से जागृत कर। मुझे अपने सामने से निकाल न दे, और अपने पवित्र आत्मा को मुझे से अलग न कर। अपने उद्धार का आनन्द मुझे फिर से दे, और उदार आत्मा देकर मुझे सम्भाल ले”(पद 10-12)। उसने पाप-अंगीकार के सबसे महत्वपूर्ण तत्व को समझा: परमेश्वर की दया पर सम्पूर्ण निर्भरता। दाऊद अपने पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर सकता था। जो उसने किया था उसे मिटाने के लिए वह कुछ भी नहीं कर सकता था और न ही कुछ कह सकता था। उसके पास “परमेश्वर के पास पहुंचने के लिए” कोई मार्ग नहीं था। दाऊद उस बात को समझ गया था जिसे यीशु ने बाद में स्पष्ट किया—कि हम ऐसे ऋणी हैं जो स्वयं के ऋणों का भुगतान नहीं कर सकते हैं।

अंगीकार दिवालियापन की घोषणा के जैसा है। परमेश्वर सिद्धता चाहता है। थोड़ा सा भी पाप एक सिद्ध अभिलेख को कलन्कित कर देता है। संसार के

सभी “भले कार्य” कलंक को नहीं मिटा सकते और हमें असिद्धता से सिद्धता की ओर नहीं ले जा सकते हैं। एक बार पाप हो जाने के पश्चात्, हम नैतिक रूप से दिवालिया हैं। हमारी एकमात्र आशा है कि वह पाप क्षमा हो और उस जन के प्रायश्चित के द्वारा ढांप दिया जाए जो पूर्ण रूप से सिद्ध है।

जब हम पाप करते हैं, तो हमारा एकमात्र विकल्प पश्चाताप होता है। बिना पश्चाताप के कोई क्षमा नहीं है। हमें परमेश्वर के सम्मुख पिसे हुए आना चाहिए। दाऊद ने इसे इस प्रकार से रखा: “तू बलि से प्रसन्न नहीं होता... टूटा मन परमेश्वर के योग्य बलिदान है; हे परमेश्वर, तू टूटे और पिसे हुए हृदय को तुच्छ नहीं जानता” (भजन 51:16-17)।

यहाँ, दाऊद के गहन विचार उसकी उस समझ को प्रकट करते हैं जो पुराने नियम के कई जन समझने में विफल रहे—कि मन्दिर में बलिदान चढ़ाने से, पापी के लिए लाभ प्राप्त नहीं होता। बलिदानों ने स्वयं से परे एक सिद्ध बलिदान की ओर संकेत दिया था। सिद्ध प्रायश्चित एक सिद्ध निष्कलंक मेमने के द्वारा चढ़ाया गया था। बैलों और बकरियों का लहू पाप को दूर नहीं करता है। यीशु का लहू ऐसा करता है। ख्रीष्ट के प्रायश्चित का लाभ प्राप्त करने के लिए, उस कवच को प्राप्त करने के लिए, यह आवश्यक है कि हम परमेश्वर के सम्मुख टूटेपन और पछतावे के भाव में आएं। परमेश्वर के लिए सच्चा बलिदान एक टूटी हुई आत्मा और पिसा हुआ हृदय है।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

दाऊद की क्षमा के अनुभव में आश्चर्य की एक महत्वपूर्ण बात थी। उसने परमेश्वर से अपने पाप को धोने और उसे शुद्ध करने के लिए विनती की थी। एक निश्चित मायने में, क्षमा को कभी भी एक आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। हमें कभी भी आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए जब परमेश्वर, अपने पापों का अंगीकार करने वालों को क्षमा करने के अपने वचन को बनाए रखता है। परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञाओं को बनाए रखता है; मनुष्य नहीं ऐसा करता है। परमेश्वर वाचा बांधने वाला है; हम वाचा तोड़ने वाले हैं।

हालाँकि, इस विषय को दूसरे दृष्टिकोण से देखते हुए, हमें तो प्रत्येक बार आश्चर्यचकित होना चाहिए जब हम क्षमा का अनुभव करते हैं। हमें परमेश्वर की दया और क्षमा के महत्व को कम नहीं आंकना चाहिए, यद्यपि हम एक ऐसी संस्कृति में रहते हैं जो कि ऐसा करती है। यह एक भयावह विचार है कि हम कितनी सहजता से परमेश्वर के अनुग्रह के महत्व को कम जानते हैं। मैं कभी-कभी कॉलेज विद्यार्थियों, धर्मविद्यालय के छात्रों, धर्मविद्यालय के अध्यापकों और सेवकों से कुछ प्रश्न पूछता हूँ: “क्या परमेश्वर प्रेम करने के लिए बाध्य है? क्या वह क्षमा और अनुग्रह दिखाने के लिए बाध्य है?” बार-बार उनके उत्तर स्वीकारात्मक होते हैं: “हाँ, निश्चित रूप से, यह परमेश्वर के स्वभाव में है कि वह प्रेममय हो। वह अनिवार्य रूप से प्रेम का परमेश्वर है। यदि उसने प्रेम प्रदर्शित नहीं किया, तो वह परमेश्वर नहीं हो सकता है। यदि परमेश्वर, परमेश्वर है, तो उसे दयालु अवश्य होना चाहिए!”

उसे अवश्य दयालु होना चाहिए? यदि यह आवश्यक है कि परमेश्वर को दयालु होना चाहिए, तो उसकी दया अब स्वतंत्र या स्वैच्छिक नहीं रही। यह बाध्यकारी हो गयी है। यदि यह ऐसी बात है, तो यह अब दया नहीं रही

प्रार्थना का अभ्यास

परन्तु न्याय है। परमेश्वर के लिये दयावान होना अनिवार्य नहीं है। जैसे ही हम सोचते हैं कि परमेश्वर दयावान होने के लिए बाध्य है, तो हमारे मस्तिष्क में यह दर्शाते हुए एक लाल बत्ती चमकनी चाहिए, कि हम अब दया के विषय में नहीं परन्तु न्याय के विषय में सोच रहे हैं। हमें “अद्भुत अनुग्रह” (*अमेज़िंग ग्रेस-Amazing Grace*) गीत गाने से कहीं अधिक करने आवश्यकता है—हमें तो बारम्बार अनुग्रह के द्वारा चकित होने की आवश्यकता है।

धन्यवाद देना

धन्यवाद देना प्रार्थना का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। इसे हमारी विनती की याचिकाओं से अविभाज्य रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। पवित्रशास्त्र हमें परमेश्वर के पास आने और धन्यवाद के साथ सभी निवेदनों को बताने के लिए कहता है। धन्यवाद परमेश्वर और उसके लाभों के लिए एक अभिस्वीकृति है। भजन 103:2 में, दाऊद कहता है, “हे मेरे मन, यहोवा को धन्य कह; और उसके किसी उपकार को न भूल।”

अकृतज्ञता एक गम्भीर विषय है। पवित्रशास्त्र में इसके विषय में कहने के लिए बहुत कुछ है। आभार प्रकट करने में असफल होना दोनों मूर्तिपूजक तथा धर्मत्यागी होने का चिह्न है।

रोमियों 1:21 में, पौलुस अन्यजातियों के दो प्राथमिक पापों की ओर ध्यान देने के लिए बुलाता है। वह कहता है, “क्योंकि यद्यपि वे परमेश्वर को जानते थे, फिर भी उन्होंने उसे न तो परमेश्वर के उपयुक्त सम्मान, और न ही धन्यवाद दिया।” सम्मान और धन्यवाद में अन्तर किया जा सकता है, परन्तु उन्हें अलग

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

नहीं किया जा सकता है। परमेश्वर धन्यवाद से सम्मानित होता है और इसके अभाव से अपमानित होता है। हमारे पास जो कुछ भी है और जो कुछ हम हैं वह सब हम अंततः अपने सृष्टिकर्ता के परोपकार के ऋणी हैं। उसके प्रति उपयुक्त कृतज्ञता को न दिखाने के द्वारा उसको तिरस्कार करने का अर्थ स्वयं को ऊँचा उठाना तथा उसे नीचा करना है।

मूर्तिपूजक को धर्मत्यागी से पृथक होकर देखना चाहिए। मूर्तिपूजक ने कभी भी विश्वास के परिवार में प्रवेश नहीं किया है। वह वाचा के समुदाय के लिए एक अपरिचित व्यक्ति है। मूर्तिपूजा और अकृतज्ञता उसको चिह्नित करती हैं। धर्मत्यागी वह है जो कलीसिया से जुड़ा है, प्रत्यक्ष वाचा के समुदाय का सदस्य बनता है, और फिर कलीसिया को नकार देता है, संसारिक अतिभोग के जीवन हेतु उसको त्याग देता है। धर्मत्यागी वह होता है “जो भूल जाता है।” उसकी स्मरण शक्ति अल्पकालीन है।

दस कोढ़ियों से यीशु की भेंट धन्यवाद के महत्व को दर्शाती है। कृतज्ञता के विषय पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, इन दस कोढ़ियों की चंगाई के विषय में अनगिनत उपदेशों का प्रचार किया गया है। इन उपदेशों में से कई का मुख्य बल यह रहा है कि यीशु ने दस कोढ़ियों को चंगा किया, परन्तु उनमें से केवल एक ही आभारी था। इस प्रकार के उपदेश के प्रति एकमात्र विनम्र प्रतिक्रिया होगी उसे वही कहना जो कि वह है—अर्थहीन। यह अकल्पनीय है कि एक कोढ़ी जो कि प्रतिदिन उस प्राचीन संसार में अत्यन्त दुर्दशा का सामना कर रहा था उस भयानक बीमारी से तुरन्त चंगाई प्राप्त करने पर कृतज्ञ नहीं होगा। यदि वह उन कोढ़ियों में से एक होता,

तो यहाँ तक कि एडोल्फ हिटलर भी कृतज्ञ होता।

कहानी में समस्या कृतज्ञता की नहीं है परन्तु धन्यवाद देने की है। कृतज्ञता की अनुभूति करना एक बात है; परन्तु इसे व्यक्त करना दूसरी बात है। कोढ़ियों को परिवार और मित्रों से अलग कर दिया जाता था। तत्काल शुद्धता का अर्थ था निर्वासन से मुक्ति। हम कल्पना कर सकते हैं कि वे अपनी पत्नियों और बच्चों को गले लगाने के लिए, अपनी चंगाई की घोषणा करने के लिए घर की ओर दौड़ते हुए बहुत अधिक प्रसन्न थे। ऐसा कौन है जो कृतज्ञ नहीं होगा? परन्तु उनमें से केवल एक ने अपने घर लौटने को थोड़ा विलम्बित किया और धन्यवाद देने के लिए समय निकाला। लूका 17 की कहानी में लिखा है: “तब उनमें से एक ने, जब देखा कि मैं चंगा हो गया हूँ, तो ऊँची आवाज़ से परमेश्वर की बड़ाई करता हुआ लौट आया; और उसे धन्यवाद देते हुए मुंह के बल, यीशु के चरणों पर गिर पड़ा। वह एक सामरी था” (पद 15-16, बलाघात जोड़ा गया)।

हमारी सभी प्रार्थनाओं में धन्यवाद को सम्मिलित होना चाहिए। उस कोढ़ी के समान, हमें ठहरना चाहिए, वापस मुड़ना चाहिए, और धन्यवाद देना चाहिए। हम परमेश्वर के इतने ऋणी हैं कि हम अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करने के लिए अपने अवसरों को कभी समाप्त नहीं कर सकते हैं।

परमेश्वर की भलाईयों को भूल जाना भी एक अपरिपक्व मसीही का चिह्न है, जो अपनी भावनाओं के अनुसार जीता है। उसकी प्रवृत्ति एक उथल-पुथल वाले आत्मिक जीवन की है, वह तीव्रता से उल्लासपूर्ण ऊँचाइयों से निराशाजनक गहराइयों तक जाता है। उच्च क्षणों में, वह परमेश्वर की उपस्थिति में प्राणपोषक भावना की अनुभूति करता है, परन्तु वह उसी क्षण निराशा में डूब जाता है जब वह ऐसी भावनाओं की प्रखर अनुपस्थिति की अनुभूति करता

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

है। अल्पकालिक स्मरण शक्ति के कष्टों का सामना करते हुए वह एक आशीष से दूसरी आशीष तक जीता है। वह सदैव “अभी” का रसास्वादन करते हुए वर्तमान में जीता है, परन्तु परमेश्वर ने जो अतीत में किया है उसको दृष्टि से ओझल कर देता है। उसकी आज्ञाकारिता और सेवा उतनी ही दृढ़ होती है जितनी कि आशीष के विषय में उसकी इससे पहले वाली स्मृति की तीक्ष्णता।

यदि परमेश्वर कभी भी हमें अपनी महिमा की एक और झलक इस जीवन में न दे, यदि वह कभी भी हमारी विनती न सुने, यदि वह हमें कभी भी अपने अनुग्रह की बहुतायत से एक और उपहार न दे, हम फिर भी, जो उसने पहले ही कर दिया है उसके लिए जीवन पर्यन्त उसे धन्यवाद देते रहने के लिए बाध्य रहेंगे। हम पहले से ही पर्याप्त रीति से प्रतिदिन धन्यवाद देने हेतु प्रेरित होने के लिए आशीषित हो चुके हैं। फिर भी, परमेश्वर हमें निरन्तर आशीष देता रहता है।

निवेदन

किसी ने एक बार मुझसे कहा कि, “क्योंकि इतने सारे लोग भूख से मर रहे हैं, तो मेरे लिए अपने बैठक कक्ष की कालीन के लिए प्रार्थना करना अनुचित हो सकता है।” किन्तु फिर भी जो परमेश्वर संसार के खाली पेटों की चिन्ता करता है यह वही परमेश्वर है जो खाली बैठक कक्षों की भी चिन्ता करता है। जो हमारे लिए महत्वपूर्ण है वह हमारे पिता के लिए भी महत्वपूर्ण हो सकता है। यदि हम अपने निवेदन की प्राथमिकताओं के विषय में निश्चित नहीं हैं, तो यह हमें परमेश्वर को बताना चाहिए। याकूब 1:5 कहता है, “यदि तुम में से किसी को

बुद्धि की कमी हो, तो वह परमेश्वर से मांगे और उसे दी जाएगी, क्योंकि वह प्रत्येक को बिना उलाहना दिए उदारता से देता है।” यूनानी वाक्यांश जिसका अनुवाद “बिना उलाहना के” है, उसका शाब्दिक अर्थ है, “क्रोधित व रुष्ट हुए बिना।” हमें परमेश्वर की उलाहना से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, यदि हम उक्त स्थिति में सच्चाई से उसकी इच्छा की खोज कर रहे हैं।

प्रार्थना में परमेश्वर के सम्मुख लाने के लिए कुछ भी बहुत बड़ा या बहुत छोटा नहीं है, जब तक कि वह कुछ ऐसा नहीं है जिसे हम जानते हैं कि यह परमेश्वर की व्यक्त इच्छा के विपरीत है जैसा कि उसके वचन में स्पष्ट किया गया है। स्पष्ट रूप से परमेश्वर से हमें सक्षम चोर बनाने के लिए प्रार्थना करना अत्यन्त अनुचित होगा। हमें परमेश्वर की परीक्षा नहीं लेनी चाहिए जैसा कि उस व्यक्ति ने राष्ट्रीय टेलीविज़न पर एक साक्षात्कार के दौरान प्रकट किया कि उसने परमेश्वर के साथ एक समझौता किया था। उसने घोषणा की कि उसने परमेश्वर से प्रतिज्ञा की थी कि यदि परमेश्वर उसके दो वेश्यालयों को आशीष दे, तो वह अपना शेष जीवन उसकी सेवा में बिताएगा।

परन्तु तब क्या होगा जब हमारी प्रार्थनाएं अनुत्तरित प्रतीत होती हैं? कभी कभार हमें ऐसा लगता है जैसे कि हमारी प्रार्थनाओं में छत को भेदने की शक्ति का अभाव है। यह ऐसा है जैसे कि मानो हमारी याचिकाएं बहरे कानों पर पड़ती हैं, और परमेश्वर हमारे भावपूर्ण निवेदनों के प्रति अप्रभावित या अचिंतित बना रहता है। क्यों ऐसी भावनाएँ हमें परेशान करती हैं?

ऐसे कई कारण हैं कि क्यों हम कभी कभी प्रार्थना में निराश होते हैं। मैं कुछ अधिक महत्वपूर्ण बातों की समीक्षा करूँगा:

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

1. हम अस्पष्ट सामान्य उक्तियों में प्रार्थना करते हैं। जब हमारी सभी प्रार्थनाएं या तो अस्पष्ट होती हैं या वैश्विक पैमाने की होती हैं, तो हमारे लिए उस आनन्द का अनुभव करना कठिन होता है जो हमें स्पष्ट और स्वतः प्रकट प्रार्थना के उत्तरों में प्राप्त होता है। यदि हम परमेश्वर से “संसार में सभी लोगों को आशीष देने” या “नगर में सभी को क्षमा करने के लिए” प्रार्थना करते हैं, तो इस प्रार्थना के उत्तर को ठोस रीति से “देखना” कठिन है। प्रार्थना में रुचि का क्षेत्र व्यापक होना अनुचित नहीं है, परन्तु यदि सभी प्रार्थनाएं इतनी सामान्य हैं, तो किसी भी प्रार्थना में विशिष्ट और ठोस लागूकरण नहीं होगा।
2. हम परमेश्वर के साथ युद्ध में हैं। यदि हम परमेश्वर के साथ सामंजस्य नहीं रखते हैं या फिर उसके प्रति खुले विद्रोह में हैं, तो विरले ही हम उससे आशा कर सकते हैं कि वह हमारी प्रार्थनाओं को दयालु कान से सुनेगा। उसके कान उनकी ओर लगे हुए हैं जो उससे प्रेम करते हैं और उसकी आज्ञा पालन करने की खोज करते हैं। वह अपने कान को दुष्टों से मोड़ लेता है। इसलिए, हमारी प्रार्थनाओं की प्रभावशीलता के लिए परमेश्वर के प्रति श्रद्धा भय का मनोभाव महत्वपूर्ण है।
3. हमारी प्रवृत्ति अधीर होने की है। जब मैं धीरज के लिए प्रार्थना करता हूँ, तो प्रायः मैं उसको “इसी समय” प्राप्त करने के लिए मांगता हूँ। हमारी सबसे निष्कपट याचिकाओं का उत्तर पाने के लिए, वर्षों तक, और हाँ दशकों तक भी प्रतीक्षा करना हमारे लिए असामान्य बात नहीं है। परमेश्वर विरले ही हड़बडी में होता है। दूसरी ओर, परमेश्वर के प्रति हमारी निष्ठा प्रायः परमेश्वर द्वारा किये गये “त्वरित और

विनम्र” कृत्यों पर निर्भर होती है। यदि परमेश्वर विलम्ब करता है, तो हमारा अधीर होना निराशा को जन्म देता है। हमें, परमेश्वर से उसकी शान्ति को माँगते हुए धैर्य रखना सीखना है।

4. हमारी स्मरण शक्ति अल्पकालिक है। हमारे लिए परमेश्वर के हाथ से प्रदत्त भलाईयों और उपहारों को भूलना सरल है। संतगण परमेश्वर के उपहारों को स्मरण रखता है और उसे अपने विश्वास को सुरक्षित बनाए रखने के लिए प्रत्येक घंटे एक नए उपहार की आवश्यकता नहीं होती है।

हालाँकि परमेश्वर अनुग्रह पर अनुग्रह करता है, हमें परमेश्वर की भलाईयों में आनन्दित होने में सक्षम होना चाहिए भले ही हमें कभी भी उससे दूसरी भलाई न मिले। प्रभु को स्मरण रखिए जब आप उसके सम्मुख जाते हैं। जब आप उससे रोटी माँगेंगे तो वह आपको पत्थर नहीं देगा।

अध्याय पाँच

प्रार्थना की निषेधाज्ञाएं

पवित्रशास्त्र में प्रार्थना के सम्बन्ध में बहुत कम निषेधाज्ञाएं पाई जाती हैं। भजन 66:18 में, भजनकार दाऊद ने परमेश्वर द्वारा प्रेरित इन शब्दों को लिखा: “यदि मैं अपने मन में अधर्म को संजोए रखता, तो प्रभु मेरी न सुनता।” इब्रानी पद का अनुवाद ऐसे भी किया जा सकता है, “यदि मेरे मन में अधर्म होता, तो प्रभु ने नहीं सुना होता।”

दोनों ही स्थितियों में, दाऊद एक अवस्था को प्रस्तुत कर रहा है जिसके अंतर्गत उसकी प्रार्थना न केवल अप्रभावशाली परन्तु अनसुनी होगी। इब्रानी शब्द जिसका अनुवाद “संजोए” किया गया है वह है *राआ (raah)*, जिसका

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

अर्थ केवल “देखना है।” दूसरे शब्दों में, यदि मैं अपने जीवन को देखता हूँ और पाप को पाता और उसका पोषण करता हूँ, तो मेरी प्रार्थनाएं व्यर्थ में एक अभ्यास हैं।

क्या इसका यह अर्थ है कि यदि हमारे जीवन में पाप उपस्थित है, तो परमेश्वर हमारी प्रार्थनाएं सुनने से मना कर देता है? नहीं। यदि ऐसा होता, तो सभी प्रार्थना व्यर्थ होतीं। हालाँकि, यदि हमारे हृदय अपश्चातापी भावना से कठोर हो गए हैं, तो हमारी प्रार्थनाएं केवल व्यर्थ ही नहीं किन्तु परमेश्वर का उपहास कर रही हैं।

भजन 66 में, दाऊद स्वयं को स्मरण दिलाता है कि एक समय है जब प्रार्थना सर्वशक्तिमान के विरुद्ध किया गया एक अभिमानी, अहंकारी, घृणित और अप्रिय कार्य होता है। यह भजन परमेश्वर के पराक्रमी कार्यों के लिए सत्रह पदों के साथ आनन्द और स्तुति करते हुए आरम्भ होता है। फिर, यकायक, पद 18 में उस बात की एक गम्भीर स्मृति प्रकट होती है कि कैसे सम्पूर्ण कहानी अत्यन्त भिन्न हो सकती थी। हमें प्रार्थना में परमेश्वर के सम्मुख उचित रूप से आने के महत्व के लिए चेताया जाता है। यदि प्रार्थना नहीं करने से अधिक कुछ निकृष्ट है तो, वह है अनुचित रीति से प्रार्थना करना।

पवित्रशास्त्र के अन्य खण्ड इस दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। भजन 109:7 सुझाव देता है कि दुष्ट पुरुषों की प्रार्थनाओं को पाप के रूप में गिना जाना चाहिए। यूहन्ना 9:31 विशेष रूप से कहता है कि प्रभु पापियों की नहीं सुनता है। नीतिवचन 15:29 कहता है, “यहोवा दुष्टों से दूर है, परन्तु वह धर्मियों की प्रार्थना को सुनता है।” नीतिवचन 28:9 कहता है कि अनाज्ञाकारी की या

विद्रोही की प्रार्थना यहोवा के लिए एक “घृणित कार्य” है। यह उसके लिए धिनौना या घृणित है।

याकूब, तथापि, हमें बताता है कि धर्मी पुरुषों की प्रार्थना बहुत कुछ पूरा करती है (5:16)। परन्तु हम स्वयं के दैनिक जीवन में धर्मी नहीं हैं। हाँ, हम मसीह की धार्मिकता पहने हुए हैं, ताकि जहाँ तक परमेश्वर के सम्मुख हमारी स्थिति की बात है, हम धर्मी हैं। परन्तु मसीह में हम जो हैं उसकी व्यवहारिक अभिव्यक्ति खेदजनक रूप से असंगत और दुखद रूप से अपर्याप्त है।

ईश्वरविज्ञानी कभी कभार किसी अवधारणा को उस बात के कहने के द्वारा परिभाषित करते हैं जो वह बात नहीं कहती और साथ ही साथ उसके द्वारा जो वह कहती है। भजनकार जो बात नहीं कह रहा है वह यह है कि यदि वह पाप का दोषी होता, तो प्रभु ने उसकी नहीं सुनी होती। भजनकार यह नहीं कह रहा है कि यदि उसके हृदय में पाप होता, तो परमेश्वर ने उसकी नहीं सुनी होती।

पाप-अंगीकार प्रार्थना का अभिन्न अंग है

दाऊद भजनों में निरन्तर पाप का अंगीकार कर रहा है। हम जानते हैं कि वह यह नहीं कह रहा है कि प्रार्थना करने के लिए किसी को पवित्र होना चाहिए; अन्यथा, कोई भी कभी भी प्रार्थना नहीं करेगा। वास्तव में तो, परमेश्वर के राज्य में प्रवेश के लिए पापी होना कई पूर्वपिक्षाओं में से एक है। यीशु ने कहा कि वह धर्मियों को बुलाने नहीं आया है, परन्तु पापियों को, पश्चात्ताप करने के लिए। प्रभु की प्रार्थना को एक नमूने के रूप में, फिर से देखते हुए, हम ध्यान

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

देते हैं कि पाप-अंगीकार प्रार्थना का एक अभिन्न अंग है। पाप के अंगीकार के बिना, 1 यूहन्ना 1:9 कहता है कि, पाप की कोई क्षमा नहीं है।

मेरे परामर्शदाता, डॉ. जॉन गेरस्टनर, ने एक घटना के विषय में बताया जब उनकी बैठकों में से एक में किसी महिला ने उनसे घोषणा की, कि उसने बीस वर्षों से अधिक समय से पाप नहीं किया है। डॉ. गेरस्टनर ने कहा कि उन्हें उसके लिए दुख हुआ क्योंकि इसका अर्थ केवल यह हो सकता था कि उसने बीस से अधिक वर्षों में प्रार्थना नहीं की थी, कम से कम उस रीति से तो नहीं जिस प्रकार से प्रभु ने हमें प्रार्थना करने के लिए कहा था।

मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूँ कि जितना अधिक हम पाप करते हैं, उतना ही अधिक हम प्रार्थना के लिए योग्य हैं; स्पष्ट रूप से यह एक त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष होगा। परन्तु पाप का अंगीकार करना, हमारे “ऋणों” या “अपराधों” के लिए क्षमा मांगना, प्रार्थना के अभ्यास का एक अभिन्न अंग है, जैसा कि स्वयं हमारे प्रभु के द्वारा उल्लेखित किया गया है। वास्तव में, जितने अधिक हम ईश्वरभक्त होंगे, हम उतना ही अधिक भक्तिमय बनने का प्रयास करेंगे और उतना ही अधिक कष्टदायक रूप से हम स्वयं के पाप से अवगत होंगे। यह काफी कुछ एक पहाड़ की ओर चलने की रीति जैसा ही है। हम जितना उस पहाड़ के निकट आते हैं, उतना ही बड़ा वह प्रतीत होता है।

उस परी कथा “राजकुमारी और मटर” के विषय में विचार कीजिए। कुछ समय के लिए राजकुमारी चली गई थी, और बहुतों ने उसके सिंहासन पर दावा करने का प्रयास किया था। सच्चे राज्याधिकार को प्रमाणित करने के लिए, एक योजना गढ़ी गयी। कई गद्दों को एक दूसरे के ऊपर रखकर ढेर बनाया गया, जिसमें ढेर के बहुत नीचे एक छोटा मटर छिपा हुआ था। झूठी राजकुमारियों

में से किसी को भी इस बात का कुछ भी बोध नहीं था कि वहाँ कुछ था भी, परन्तु सच्ची राजकुमारी उस अत्यधिक असुविधा के कारण जो मटर ने उसे दी थी नहीं सो सकी। वह उस छोटे मटर की उपस्थिति के प्रति असाधारण रूप से संवेदनशील थी।

इसमें मसीहियों के लिए पाठ स्पष्ट होना चाहिए। जब हमारे पास पाप के प्रति इस प्रकार की संवेदनशीलता होती है, तो हमारे पास राजसी संवेदनशीलता होती है। जितना हम परमेश्वर के समीप होते हैं, उतना ही अधिक थोड़ा सा भी पाप हमें गहरा दुःख देगा।

हम सुनिश्चित हो सकते हैं कि पाप का दोषी होना हमें परमेश्वर की उपस्थिति में आने के विशेषाधिकार से अयोग्य घोषित नहीं करता है। भजनकार पाप करने के विषय में बात नहीं कर रहा है, परन्तु इसको अनुमति देने की बात कर रहा है। प्युरिटनों (*Puritans*) ने पाप को अनुमति देने की इस अवधारणा की बात की थी। पाप पर विजय को देखने की हमें इतनी अधिक आवश्यकता नहीं है जितना कि स्वयं लड़ाई पर ध्यान देने की है। हम पाप के साथ निरन्तर युद्ध में हैं, और हम कभी भी सकुशल नहीं निकलते हैं।

एक सच्चे मसीही को चिह्नित करने वाला चिह्न यह है कि वह कभी युद्ध करना नहीं छोड़ता है। वह सदैव विजयी नहीं होता है, यद्यपि वह मसीह के कारण अन्तिम लड़ाई में विजयी होगा। यदि कोई व्यक्ति कभी भी युद्ध करना छोड़ देता है, तो उसने वास्तव में बुराई का आलिंगन किया है, तथा उसे वैध ठहराया है। संक्षेप में, वह इसे अनदेखा करता है, यहाँ तक कि इसकी अनुमति भी देता है।

पहली धन्यवाणी “धन्य हैं वे जो मन के दीन हैं” पर एक उपदेश में, महान अंग्रेज उपदेशक चार्ल्स हैडन स्पर्जन ने कहा कि “घमण्डी पापी, ख्रीष्ट को चाहता है, और अपने स्वयं के प्रीतिभोजों को भी; ख्रीष्ट को, और अपने

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

स्वयं की वासनाओं को; ख्रीष्ट को, और अपने स्वयं की पथभ्रष्टता को। वह जो वास्तव में आत्मा में दरिद्र है केवल ख्रीष्ट को चाहता है, और वह कुछ भी करेगा, और उसे प्राप्त करने के लिए कुछ भी दे देगा!” भजन 66 यही सुझाव दे रहा है। किसी पाप को संजोते हुए प्रार्थना करने का प्रयास करने वाले ऐसे व्यक्ति का विचार, जो किसी पाप को पकड़े हुए है जिसे वह ख्रीष्ट की प्रभुता की अधीनता में त्यागने को तैयार नहीं है, यह बात ऐसे व्यक्ति के पुत्रत्व की वैधता पर संदेह की एक काली छाया डालता है।

किसी भी “बाधा” की अनुमति नहीं

पवित्रशास्त्र इस अवधारणा के अन्य व्यवहारिक लागूकरणों को उद्धृत करता है। पहला पतरस 3:7 कहता है: “इसी प्रकार, पतियो, तुम में से प्रत्येक अपनी पत्नी के साथ समझदारी से रहे, उसे निर्बल पात्र जाने, क्योंकि वह स्त्री है। वह जीवन के अनुग्रह में से संगी वारिस जानकर उसका आदर करे, जिस से तुम्हारी प्रार्थना में बाधा न पहुंचे।” जिस यूनानी शब्द *एगकोपटो* (*egkoptō*) का अनुवाद “बाधा” है, उसका शाब्दिक अर्थ है “काट देना।” यदि वैवाहिक सम्बन्ध में मतभेद को सुलझाया नहीं जाता है, तो प्रार्थनाएं काट दी जाती हैं। यह भजन 66 की आरम्भिक चेतावनी को प्रतिध्वनित करता है।

एक दूसरा उदाहरण मत्ती 5:23-24 में पाया जाता है: “इसलिए यदि तू अपनी भेंट वेदी पर लाए और वहाँ तुझे स्मरण आए कि मेरे भाई को मुझ से कोई शिकायत है, तो अपनी भेंट वेदी के सामने छोड़ दे और जाकर पहले

अपने भाई से मेल कर ले और तब आकर अपनी भेंट चढ़ा।” यहाँ यीशु कह रहा है कि यदि हमारे जीवन में अनसुलझे झगड़े हैं, तो हमारी आराधना कलंकित है। वह प्राथमिकताओं को स्पष्ट कर देता है। पहले, हमें उन बातों पर चौकसी रखनी है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है; हमें तब उसके पश्चात आना है और अपनी आराधना अर्पित करनी है। यद्यपि यह खण्ड विशेष रूप से प्रार्थना के विषय में नहीं बोलता है, विवादों को सुलझाने का सिद्धान्त अनवरत है।

जब हम परमेश्वर से बिना पाप-अंगीकार किए याचिका करते हैं—अर्थात् अशुद्धता हटाए बिना—हृदय में छिपे हुए पाप के साथ, तो हम कॉलेज के उस क्रोधित छात्र के जैसे हैं जो असफल प्राप्तांक के विषय में अपने प्रोफेसर का सामना करता है। प्रोफेसर ने विनम्रता से छात्र की कुंठाओं को सुना, किन्तु टिप्पणी की, कि अपने खरे व्यावसायिक आंकलन के अनुसार, छात्र को वह अंक मिला था जिसके वो योग्य था। छात्र ने प्रत्युत्तर दिया कि न केवल उसे परन्तु कक्षा में कई अन्य लोगों को प्रतीत हुआ कि यह अन्यायपूर्ण था।

प्रोफेसर ने स्वाभाविक रीति से जागृत उत्सुकता के साथ, यह पूछा कि वे क्या सोचते हैं कि क्या किया जाना चाहिए। इस बात पर, उस छात्र ने समझाया कि: “उन्होंने निर्णय लिया है कि आपको गोली मार दी जानी चाहिए। परन्तु एक छोटी सी समस्या है। उनमें से किसी के पास भी बंदूक नहीं है।” प्रोफेसर ने राहत की साँस ली और “इन छात्रों की दुर्दशा” पर गहरा खेद व्यक्त किया। “परन्तु आपके पास तो एक बंदूक है,” उस युवक ने कहा। इस

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

छात्र ने उस दयालु प्रोफेसर से यह पूछने का दुस्साहस किया कि क्या वह स्वयं प्रोफेसर की बंदूक उधार ले सकता है ताकि छात्रगण उसे गोली मार सकें।

इसी प्रकार दुस्साहस पूर्ण रीति से, जब हम प्रार्थना करते हैं तो यदि हम अपने जीवन में अधर्म देखते हैं और स्वयं के हृदय में उसको बनाए रखते हैं, तो हम परमेश्वर से उसे शाप देने के लिए उस सामर्थ्य की माँग कर रहे हैं जिसकी हमें आवश्यकता है। हम परमेश्वर से उसकी और अधिक अवज्ञा करने के लिए और अधिक सामर्थ्य के लिए याचना कर रहे हैं। जिस प्रकार प्रोफेसर उन लोगों को जो उसे मार देंगे उधार में बंदूक नहीं देने वाला था, परमेश्वर भी हमारे पापी हृदयों से किए गए हमारे अनुरोधों का सम्मान नहीं करने वाला है।

परन्तु तब क्या यदि हमारी प्रार्थनाएं अनुत्तरित प्रतीत होती हैं? कभी कभार हमें ऐसा लगता है जैसे कि हमारी प्रार्थनाओं में छत को भेदने की शक्ति का अभाव है। यह ऐसा है जैसे कि मानो हमारी याचिकाएं बहरे कानों पर पड़ती हैं, और परमेश्वर हमारे भावपूर्ण निवेदनों के प्रति अप्रभावित या अचिंतित बना रहता है। क्यों ऐसी भावनाएँ हमें परेशान करती हैं?

अध्याय छह

प्रार्थना की सामर्थ्य

हम उस विश्वास की सूची द्वारा प्रेरित होते हैं जो हमें इब्रानियों की पुस्तक के ग्यारहवें अध्याय में मिलती है। वहाँ हमारे पास “विश्वास की नामावली” है, जो बाइबल में विश्वास के पुरुषों और महिलाओं के वीर कार्यों को सूचीबद्ध करती है। पद 33 और 34 में उनके कार्यों को आंशिक रूप से सारांशित किया गया है: “जिन्होंने विश्वास ही से राज्य जीते, धार्मिकता के कार्य किए, प्रतिज्ञा की हुई वस्तुएं प्राप्त की, सिंहों के मुंह बन्द किए, आग की ज्वाला को शान्त किया, तलवार की धार से बच निकले, निर्बलता में बलवान किए गए, युद्ध में वीरता दिखाई, विदेशी सेना को मार भगाया।”

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

पवित्रशास्त्र प्रार्थना के नायकों की इसी प्रकार की सूचीपत्र प्रदान नहीं करता है, किन्तु ऐसी सूची को सरलता से संकलित किया जा सकता है। उसी प्रकार के प्रारूप का उपयोग करते हुए जैसा कि इब्रानियों का लेखक करता है, आइये हम प्रार्थना की उपलब्धियों की एक आंशिक सूची को जाँचें:

- प्रार्थना के द्वारा, याकूब के प्रति एसाव का हृदय परिवर्तित हो गया, जिससे कि उन्होंने मित्रतापूर्ण रीति से भेंट की, न कि शत्रुता में (उत्पत्ति 32)।
- मूसा की प्रार्थना के द्वारा, परमेश्वर ने मिस्र के ऊपर महामारियों को भेजा और तद्पश्चात् उन्हें फिर से हटा दिया (निर्गमन 7-11)।
- प्रार्थना के द्वारा, यहोशू ने सूर्य को ठहरा दिया (यहोशू 10)।
- प्रार्थना के द्वारा, जब शिमशोन प्यास से नाश होने के लिए तत्पर था, परमेश्वर ने उसके जीवनाधार के लिए एक गहरे गड्ढे से पानी निकाला (न्यायियों 15)।
- प्रार्थना के द्वारा, शिमशोन का बल पुनः स्थापित हुआ। उसने दागोन के मन्दिर को पलिश्टियों के ऊपर गिरा दिया, ताकि जिन लोगों को उसने मरते समय मारा, वे उनसे कहीं अधिक थे जिनको उसने अपने जीवनकाल में मारा था (न्यायियों 16)।
- प्रार्थना के द्वारा, एलिय्याह ने वर्षा को साढ़े तीन वर्षों तक रोके रखा। फिर प्रार्थना के द्वारा, उसने वर्षा को पुनः बरसाया (1 राजा 17-18)।

प्रार्थना की सामर्थ्य

- हिजकिय्याह की प्रार्थना के द्वारा, परमेश्वर ने एक स्वर्गदूत को भेजा और सन्हेरीब की सेना के 185,000 पुरुषों को एक ही रात में मार डाला (2 राजा 19)।
- आसा की प्रार्थना के द्वारा, परमेश्वर ने जेरह के सैनिकों को पराजित किया (2 इतिहास 14)।

मेरे पास समय कम पड़ जाएगा अब्राहम के विषय में बताने के लिए, जिसने एक पुत्र के लिए प्रार्थना की और उसको एक सौ वर्ष की आयु में प्राप्त किया; और मूसा, जिसने लाल समुद्र पर सहायता प्राप्त की; और इस्राएली लोग, जिन्हें मिस्र से अनेक प्रार्थनाओं के पश्चात छुड़ाया गया; और दाऊद, जो प्रार्थना के द्वारा शाऊल के विश्वासघात से बच निकला; और सुलैमान, जिसने प्रार्थना के परिणाम स्वरूप महान बुद्धि को प्राप्त किया; और दानिय्येल, जो प्रार्थना के पश्चात स्वप्न के अर्थ को बताने में सक्षम हुआ। लोगों को संकट से छुड़ाया गया, बीमारियों से चंगाई मिली, प्रियजनों को ठीक होते हुए देखा, और प्रभावशाली प्रार्थना के फलस्वरूप असंख्य आश्चर्यकर्मों की साक्षी दी।

याकूब ने, चाहे जो भी हो, जब उसने लिखा तो इस बात को बढ़ा चढ़ा कर के नहीं बताया कि धर्मी जन की प्रभावशाली प्रार्थना से बहुत कुछ हो सकता है (5:16)।

प्रतिज्ञाओं के प्रतिबन्ध

प्रार्थना की सामर्थ्य ना ही स्वचलित है और ना ही जादुई है। प्रार्थना के सम्बन्ध में बाइबल की प्रतिज्ञाओं से प्रतिबन्ध जुड़े हुए हैं। कभी-कभार, प्रार्थना के

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

विषय में संक्षिप्त सूक्तियों को बोलकर अपने लोगों को इसके अभ्यास के लिए प्रोत्साहित करने के लिए यीशु एक प्रकार की “आशुलिपि” का उपयोग करता है। हमें इस प्रकार के कथनों को स्मरण दिलाया जाता है जैसे कि, “मांगो तो तुम्हें दिया जाएगा” (मत्ती 7:7); “यदि तुम में से दो जन पृथ्वी पर किसी विनती के लिए एकमत हों, तो वह मेरे स्वर्गीय पिता की ओर से उनके लिए पूरी हो जाएगी” (मत्ती 18:19); और, “जो कुछ तुम प्रार्थना में विश्वास से मांगोगे वह तुम्हें मिलेगा” (मत्ती 21:22)।

इस प्रकार की सारांशित आशुलिपियों ने प्रार्थना के विचित्र सिद्धांतों को उकसाया है। यह ऐसा तब होता है जब लोग इन खण्डों को बाकी उन सब बातों से पृथक कर देते हैं जो यीशु और बाइबल प्रार्थना के विषय में कहते हैं। जब हम इन सूक्तियों को सरलीकृत रीति से समझने का प्रयत्न करते हैं तो विरूपण और भी अधिक बढ़ जाते हैं। किन्हीं भी दो सहमत होने वाले जनों के विषय में इस कथन पर विचार कीजिए। किन्हीं ऐसे दो मसीहियों को ढूँढना कठिन नहीं होगा जो इस बात से एकमत हैं कि संसार को युद्ध या कैंसर से छुटकारा दिलाना एक उत्तम विचार होगा। हालाँकि, इस विषय में उनकी प्रार्थना स्वचालित रूप से उनकी इच्छा को पूर्ण नहीं करेगी। परमेश्वर का वचन इंगित करता है कि युद्ध और बीमारी ख्रीष्ट के वापसी के समय तक रहेंगे। निर्धारित समय से पूर्व उनके सम्पूर्ण उन्मूलन की अपेक्षा करना परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को समय से पूर्व पूरा होना समझ लेना है।

हमें अभी भी पाप, बीमारी, और मृत्यु के प्रकोप का सामना करना होगा। हम परमेश्वर से हमें ढाँढस देने के लिए, छुड़ाने के लिए, चंगा करने के लिए

विनती करते हैं —परन्तु हम इन बातों को सम्पूर्णता के साथ नहीं मांग सकते हैं।

यह विचार कि परमेश्वर “सदैव चंगाई चाहता है” मसीही समुदाय में एक विनाशकारी विरूपता रही है। इससे निकलने वाली अगुवों की समस्याएं बहुत विशाल हैं। एक बार मस्तिष्क पक्षाघात से पीड़ित एक युवक ने मुझसे सम्पर्क किया। उसका मसीही विश्वास उत्साहपूर्ण था, उसकी मनोवृत्ति सुखद आशावाद से संक्रमित थी, और उसकी उत्पादकता असाधारण थी। उसने महाविद्यालय से एक उच्च श्रेणी से स्नातक किया था। मुझसे उसने हृदयस्पर्शी प्रश्न पूछा: “डॉक्टर स्पोल, क्या आप सोचते हैं कि मैं दुष्ट आत्माओं से ग्रसित हूँ?” यह प्रश्न आँसुओं सहित था। इस व्यक्ति का जीवन अस्तव्यस्तता में फेंक दिया गया था।

इस प्रश्न पर भौचक्का होकर, मैंने प्रतिउत्तर दिया, “आप क्यों इस प्रकार का प्रश्न पूछ रहे हैं?”

उस जवान युवक ने कुछ मसीही मित्रों के साथ हुई एक भेंट के पश्चात उत्प्रेरित घटनाओं की श्रृंखला का आगे वर्णन किया जिन्होंने पवित्रशास्त्र की प्रतिज्ञा का “दावा” किया था और “सहमत हुए थे” कि वह जवान युवक मस्तिष्क के पक्षाघात से चंगा हो जाएगा। उन्होंने “विश्वास की प्रार्थना” करते हुए उसके ऊपर हाथ रखा था, और उसकी चंगाई के लिए दृढ़तापूर्वक प्रार्थना करते रहे। जब यह स्पष्ट हो गया कि वह चंगा नहीं हुआ था, उन्होंने पहले तो उसको उसके विश्वास की कमी के लिए ताड़ना दी। तत्पश्चात उन्होंने दावा किया कि वह किसी जघन्य गुप्त पाप का दोषी था जो चंगाई को बाधित कर

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

रही थी। अन्ततः उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वह दुष्ट आत्माओं से ग्रस्त था और उसे प्रताड़ित प्राण के साथ छोड़ दिया। उसके “मित्रों” ने कभी यह विचार नहीं किया कि त्रुटि स्वयं उनकी हो सकती है। उन्होंने उत्साही, आत्मा से भरे हुए मसीही होने का छाप तो छोड़ा। किन्तु उनके कार्यों ने, सबसे उत्तम स्थिति में, अपरिपक्वता; और सबसे बुरी स्थिति में, अहंकार और धृष्टता को प्रकट किया।

प्रार्थना जादू नहीं है। परमेश्वर कोई दिव्य सेवक नहीं है जो हमारी प्रत्येक सनक को सन्तुष्ट करने के लिए हमारे निर्देशों का पालन करने के लिए तत्पर रहे। कुछ स्थितियों में, हमारी प्रार्थनाओं को, प्राण के घोर परिश्रम और हृदय की पीड़ा में सम्मिलित होना चाहिए जैसे कि यीशु ने स्वयं गतसमनी के बगीचे में अनुभव किया था। कभी-कभी अपरिपक्व मसीही कड़वी निराशा का सामना करते हैं, इसलिए नहीं कि परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करने में असफल रहा, परन्तु इसलिए कि भले-उद्देश्यपूर्ण मसीहियों ने परमेश्वर “की ओर से” ऐसी प्रतिज्ञाएं की हैं जिसके लिए परमेश्वर ने कभी भी अधिकार नहीं दिया था।

जो साधारण सारांश यीशु देता है, वह प्रार्थना में हमें प्रोत्साहित करने के लिए बनाए गए हैं। यह नमूना सरल प्रतीत होता है। हमें माँगना है और हम प्राप्त करेंगे। हालाँकि, नया नियम हमें एक पूर्ण दृश्य प्रदान करते हुए प्रतिबन्धों को और स्पष्ट करता है, कि प्रभावी प्रार्थना में क्या सम्मिलित होता है:

1. यूहन्ना 9:31—“हम जानते हैं कि परमेश्वर पापियों की नहीं सुनता, परन्तु यदि कोई परमेश्वर का भय मानने वाला हो, और उसकी इच्छा पूरी करता हो तो वह उसकी सुनता है।”

2. यूहन्ना 14:13—“जो कुछ तुम मेरे नाम से मांगोगे, वही करूँगा कि पुत्र में पिता की महिमा हो।”
3. यूहन्ना 15:7—“यदि तुम मुझ में बने रहो, और मेरे वचन तुम में बने रहें तो जो चाहो माँगो, और वह तुम्हारे लिए हो जाएगा।”
4. 1 यूहन्ना 3:22—“जो कुछ हम मांगते हैं, उस से पाते हैं, क्योंकि हम उसकी आज्ञाओं का पालन करते और वे ही कार्य करते हैं जो उसकी दृष्टि में प्रिय हैं।”
5. 1 यूहन्ना 5:14—“जो साहस हमें उसके सम्मुख होता है वह यह है; कि यदि हम उसकी इच्छा के अनुसार कुछ मांगें, तो वह हमारी सुनता है।”

जैसे कि ये खण्ड प्रकट करते हैं, जो हम परमेश्वर से प्राप्त करना चाहते हैं उसके लिए मात्र मांगने से कहीं बढ़कर के और भी अन्य बातें हैं। परमेश्वर पर भरोसा रखना पर्याप्त नहीं है। परमेश्वर के प्रति उचित सम्मान, उसकी इच्छा के अनुसार आज्ञाकारिता, और खीष्ट के साथ निरन्तर सहभागिता होनी चाहिए। परमेश्वर की प्रकट इच्छा के अनुसार, और उसके स्वभाव और चरित्र के अनुरूप निवेदन किया जाना चाहिए।

बाइबल हमें “यीशु के नाम में” प्रार्थना करने के लिए निर्देश देती है। यीशु के नाम का आह्वान करना एक जादुई मंत्रोच्चार नहीं है; इसका महत्व अत्यधिक गहरा है। जिस संस्कृति में बाइबल लिखी गई थी, वहाँ व्यक्ति का नाम उसके

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

गुणों और चरित्र को दर्शाता था। यीशु के नाम में कुछ माँगना प्रार्थना के अन्त में मात्र एक वाक्यांश को जोड़ना नहीं है। इसके विपरीत, इसका अर्थ है कि हम विश्वास करते हैं कि हमारे निवेदन हमारे महायाजक, हमारे मध्यस्थ की ओर निर्देशित किए गए हैं।

हमने देखा है कि जब हम प्रार्थना करते हैं तो कुछ पूर्वापेक्षाएं हैं जिनका हमें पालन करना चाहिए। यदि हम कुछ मांगते हैं, तो हमें परमेश्वर पर यह जानते हुए भरोसा करना चाहिए, कि हमारी विनती पिता की इच्छा और मसीह के स्वभाव और उद्देश्य के अनुरूप है। परमेश्वर के लिए हमारे पास उचित सम्मान होना चाहिए और साथ ही साथ यह आश्वासन कि जो उसने प्रकट किया है उसके प्रति हम आज्ञाकारी हैं। हमें ख्रीष्ट के साथ निरन्तर (यद्यपि असिद्ध) सहभागिता बनाए रखना चाहिए। सभी पूर्वापेक्षाएं पूर्ण होने के पश्चात, हमें भरोसा हो सकता है कि हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर दिया जाएगा। जो महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है वह यह है कि यदि हम इन पूर्वापेक्षाएं को पूरा करते हैं, तो हम परमेश्वर की इच्छा के बाहर कुछ भी नहीं मांगेंगे।

हमारी प्रार्थनाओं का हमारी अभिलाषा के अनुसार उत्तर नहीं मिलने का एक अन्य कारण याकूब 4:3 में हमें दिया गया है। हमें बताया गया है कि जो हम मांगते हैं वह हमारे पास नहीं है क्योंकि हम बुरे उद्देश्यों से मांगते हैं, हम प्रार्थना में उन वस्तुओं की माँग करते हैं जो हमें दुष्ट सुखों का पीछा करने की अनुमति देंगी। परमेश्वर हमें उन वस्तुओं को नहीं देने वाला है जिनका हम दुरुपयोग करेंगे। न तो वह अज्ञानता में किए गए अनुरोधों का उत्तर देने वाला है, जो कि विनाशकारी प्रमाणित होगा।

मूसा एक प्रधान उदाहरण है। निर्गमन 33:18 में, वह प्रार्थना करता है “कृपया मुझे अपनी महिमा दिखा।” मूसा ने परमेश्वर से बातचीत की थी। उसने परमेश्वर को अनेक आश्चर्यकर्म करते हुए देखा था: जलती हुई झाड़ी, महामारियाँ, लाल समुद्र का विभाजन। परन्तु अब मूसा उस महान वस्तु को चाहता है: “परमेश्वर, वे सब बातें तो महान थीं, परन्तु अब मुझे सब कुछ प्राप्त कर लेने दो। मुझे अपना मुख देखने दे!”

पद 19 और 20 में, परमेश्वर कहता है: “मैं स्वयं अपनी सारी भलाई तेरे समक्ष प्रकट करूँगा, और तेरे समक्ष ‘यहोवा’ के नाम का प्रचार करूँगा; और जिस पर अनुग्रह करना चाहूँ उस पर अनुग्रह करूँगा, और जिस पर दया करना चाहूँ उस पर दया करूँगा। परन्तु . . . तू मेरे मुख का दर्शन नहीं कर सकता, क्योंकि कोई मनुष्य मेरे मुख का दर्शन करके जीवित नहीं रह सकता।”

परमेश्वर, मूसा पर उसके निवेदन को ठुकराने के द्वारा एक अति महान उपकार कर रहा था। यदि परमेश्वर ने मूसा को उसकी इच्छा प्रदान कर दी होती, तो उसके लिए उसे अपने जीवन के द्वारा मूल्य चुकाना पड़ता। कोई भी मनुष्य परमेश्वर को देखने के पश्चात जीवित नहीं रह सकता है। मूसा को आनन्दित होना चाहिए था कि परमेश्वर ने नकार दिया।

सम्भवतः एक अन्य कारण है कि हम अपनी प्रार्थनाओं के वांछित उत्तरों को देखने में असफल रहते हैं, क्योंकि हम उन वस्तुओं के लिए प्रार्थना कर रहे हैं जो हमारे पास खीष्ट में पहले से ही हैं। यूहन्ना 4 में, यीशु कुएँ के पास स्त्री से बात करता है। वह उससे यह कहता है कि यदि उसे ज्ञात होता कि वह किससे बात कर रही है, तो वह यह जानती कि उसे क्या निवेदन करनी चाहिए। यह बात हमारे विषय में भी सच है। यदि हम वास्तविक रूप से जानते होते कि परमेश्वर कौन है और वह सब कुछ जो उसने हमें खीष्ट में दे दिया है, तो जो हमारा प्रार्थना का जीवन अभी है वह बहुत भिन्न होता।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

मध्यस्थ की सामर्थ्य

प्रार्थना परमेश्वर के पास किसी निवेदन को ले जाने का याजकीय कार्य है। पुराने नियम के समय में, मध्यस्थों के दो प्रमुख वर्गों ने परमेश्वर और लोगों के मध्य में कार्य किया था: नबियों और याजकों ने। साधारण रीति से कहें तो, नबी परमेश्वर के द्वारा ठहराया गया था कि लोगों को उसके ईश्वरीय वचन बताए। नबी परमेश्वर की ओर से लोगों से बात करता था। इसके विपरीत, याजक लोगों का प्रवक्ता होने के लिए परमेश्वर द्वारा नियुक्त किया गया था। याजक परमेश्वर से लोगों के लिए बात करता था।

नए नियम में, ख्रीष्ट न केवल नबी और याजक के पदों को कार्यविन्त करता है परन्तु राजा का भी। स्वयं के याजकीय भूमिका में, उसने सिद्ध बलिदान किया, एक बार सदा के लिए सिद्ध प्रायश्चित को अर्पित किया। फिर भी क्रूस मसीह के याजकीय पद का अन्त नहीं था। अपने स्वर्गारोहण में वह स्वर्गीय महापवित्र स्थान में प्रवेश हुआ, जहाँ से वह हमारे महान महायाजक के रूप में कार्य कर रहा है। वहाँ वह हमारी ओर से पिता से निवेदन करते हुए अपने लोगों के लिए प्रार्थना करता है। ख्रीष्ट की प्रार्थना की सामर्थ्य को मापा नहीं जा सकता है। इसको न केवल उसके द्वारा पृथ्वी पर किए गए आश्चर्यकर्मों से, परन्तु उसकी सांसारिक सेवा काल के दौरान उसकी मध्यस्थता की प्रार्थनाओं के द्वारा भी चित्रित किया जा सकता है।

यहूदा और शमौन पतरस के प्रकरणों पर विचार कीजिए। दोनों ही ऐसे चेले थे जिन्होंने यीशु के सबसे अंधकारमय समय में उसके विरुद्ध विश्वासघात के जघन्य कार्यों को किया था। यहूदा ने आत्महत्या कर ली, जबकि शमौन

को पुनःस्थापित किया गया और वह यरूशलेम में आरम्भिक कलीसिया का “चट्टान” बन गया। क्यों?

उनके आगामी विश्वासघात के विषय में यीशु की घोषणाओं में इन पुरुषों के बीच में एक अत्यंत महत्वपूर्ण अन्तर देखा जा सकता है। यहूदा के विषय में उसने कहा, “मैं तुम से सच सच कहता हूँ, कि तुम में से एक मुझे पकड़वाएगा” (यूहन्ना 13:21)। जब चेलों ने यीशु से विश्वासघाती की पहचान करने के लिए कहा, तो उसने उत्तर दिया, “जिसको मैं रोटी का टुकड़ा डुबो कर दूँगा, वही है” (पद 26)। तब यीशु ने रोटी का टुकड़ा डुबोया, यहूदा को दिया, और कहा, “जो तू करता है, तुरन्त कर” (पद 27)।

बाद में सन्ध्या के समय उसकी मध्यस्थता की महान प्रार्थना में, यीशु ने कहा, “जब मैं उनके साथ था, मैंने तेरे उस नाम से जो तूने मुझे दिया है उनकी रक्षा की, और विनाश के पुत्र को छोड़ उन में से कोई नाश न हुआ, इसलिए कि पवित्रशास्त्र की बात पूरी हो” (यूहन्ना 17:12)। यहाँ यीशु ने यहूदा के विषय में प्रार्थना की, परन्तु यहूदा के लिए नहीं की, और उसे “विनाश का पुत्र” कहा।

पतरस के नकारने के प्रकरण में, यीशु ने उस से घोषणा की: “शमौन, हे शमौन, देख! शैतान ने तुम लोगों को गेहूँ के समान फटकने के लिए आज्ञा मांग ली है। परन्तु मैंने तेरे लिए प्रार्थना की है कि तेरा विश्वास चला न जाए। अतः जब तू फिर तो अपने भाइयों को स्थिर करना” (लूका 22:31-32)।

ध्यान दीजिए कि यीशु ने यह नहीं कहा, “यदि तू फिर, तो अपने भाइयों

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

को स्थिर करना,” परन्तु “जब तू फिरे।” यीशु को पतरस की पुनःस्थापना का भरोसा था। हम इस बात से नकार नहीं सकते हैं परन्तु इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यीशु के भरोसा का एक बड़ा कारण उसके पहले के शब्दों पर आधारित था: “परन्तु मैंने तेरे लिए प्रार्थना की है।”

यीशु ने यहूदा के विषय में प्रार्थना की थी। उसने शमौन पतरस के लिए प्रार्थना की थी। उसने पतरस के लिए मध्यस्थता की थी। उसने पतरस के याजक के रूप में कार्य किया था। अब इसी क्षण मसीह हमारे महायाजक के रूप में कार्य कर रहा है, हमारे लिए मध्यस्थता कर रहा है।

इब्रानियों 4:14-16 में लेखक का यह प्रफुल्लित करने वाला निष्कर्ष है:

जबकि हमारा ऐसा बड़ा महायाजक है जो स्वर्गों में से होकर गया, अर्थात् परमेश्वर का पुत्र यीशु, तो आओ, हम अपने अंगीकार को दृढ़ता से थामे रहें। क्योंकि हमारा ऐसा महायाजक नहीं जो हमारी निर्बलताओं में हमसे सहानुभूति न रख सके। वह तो सब बातों में हमारे ही समान परखा गया, फिर भी निष्पाप निकला। अतः हम साहस के साथ अनुग्रह के सिंहासन के निकट आएँ कि हम पर दया हो और अनुग्रह पाएँ कि आवश्यकता के समय हमारी सहायता हो।

हो सके तो ये वचन हमारे प्राणों के लिए जीवन बन जाएँ जब हम इन्हें स्वयं के लिए थाम लेते हैं।

प्रार्थना की सामर्थ्य

प्रार्थना की सामर्थ्य का उपयोग करना

प्रार्थना के लिए एक संरचना की आवश्यकता होती है, परन्तु स्वच्छंदता के मूल्य पर नहीं। हमें हमारी आत्मिक यात्रा में हानिकारक कठिनाइयों से बचने के लिए मैन दिशा प्रदान करने प्रयास किया है। कोई भी संगीत मण्डली निर्देशक अपने संगीतकारों से उनके हृदयों में जो कुछ भी है उसको बजाने के लिए नहीं कहता है और फिर वह “चमचमाते-सितारों का झण्डा” (द स्टार-स्पैंगल्ड बैनर-अमरीकी राष्ट्रगीत) सुनने की आशा करे। वहाँ क्रम होना चाहिए, और प्रक्रिया थोड़ी बहुत नियंत्रित होनी चाहिए। यद्यपि, सम्मान और क्रम की सीमाओं के अन्तर्गत व्यक्तिगत आत्म-अभिव्यक्ति के लिए अवसर उपस्थित होते हैं।

हम प्रार्थना क्यों करते हैं?

- हम प्रार्थना करते हैं क्योंकि परमेश्वर ने इसकी आज्ञा दी है और क्योंकि जब हम प्रार्थना करते हैं तो वह महिमान्वित होता है।
- हम प्रार्थना करते हैं क्योंकि यह हमारे हृदय को उसके लिए तैयार करती हैं जो हम उससे प्राप्त करेंगे।
- हम प्रार्थना करते हैं क्योंकि प्रार्थना से बहुत कुछ पूरा होता है।
- हम प्रार्थना करते हैं, परमेश्वर की उपासना करने के लिए, उसकी स्तुति के लिए, उसके प्रताप, उसकी प्रभुता, और उसके सामर्थी कार्यों के प्रति अपने आश्चर्य को व्यक्त करने के लिए।
- हम प्रार्थना करते हैं परमेश्वर से अपने पापों का अंगीकार करने के लिए, जो भले ही असंख्य हैं, और उसके हाथ से अनुग्रह, दया और क्षमा का अनुभव करने के लिए।
- हम प्रार्थना करते हैं उसे धन्यवाद देने के लिए, जो सब वह है और वह सब जो उसने किया है।

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

- हम प्रार्थना करते हैं उसे अपने निवेदन अवगत कराने के लिए, उस निमन्त्रण को पूरा करने के लिए जो उसने हमारे लिए छोड़ दिया है।

जब हम प्रार्थना करते हैं, तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि परमेश्वर कौन है और हम उसके सम्मुख कौन हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि परमेश्वर के नाम को पवित्र रखना प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि वह हमारे प्रावधान का स्रोत है और सभी भली वस्तुएं उसी से आती हैं। हमें इस रीति से जीना है कि हम परमेश्वर के राज्य को इस संसार में प्रत्यक्ष बनाएं। हमें नियमित रूप से स्वयं के पापों का अंगीकार करना चाहिए, क्योंकि एक मसीही होने के निश्चित चिन्हों में से यह एक है। हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि परमेश्वर दुष्ट जन से हमारी रक्षा करे।

हमें सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि परमेश्वर ही परमेश्वर है और वह किसी भी मनुष्य का ऋणी नहीं है। जैसा कि भजनकार कहता है, “जो कुछ वह चाहता है, वह करता है” (भजन संहिता 115:3)। हमें परमेश्वर के समक्ष साहसपूर्वक आने के लिए आमंत्रित किया गया है, परन्तु कभी भी बिना गम्भीरता के, अहंकारपूर्ण, या धृष्टता के साथ नहीं। सभोपदेशक 5:2 हमें स्मरण दिलाता है कि “परमेश्वर के सामने बोलने में उतावली मत करना, क्योंकि परमेश्वर तो स्वर्ग में है और तू पृथ्वी पर है।”

अन्त में, यदि यह सीखने के लिए कोई रहस्य है कि प्रार्थना कैसे करनी चाहिए, तो वह किसी अन्य प्रयास से भिन्न नहीं है। किसी भी बात में निपुण होने के लिए, हमें अभ्यास करना चाहिए। यदि हम सीखना चाहते हैं कि प्रार्थना कैसे करें, तो हमें अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए—और निरन्तर प्रार्थना करते रहना चाहिए।

लेखक के विषय में

डॉ. आर.सी. स्मोल लिग्रिएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक, फ्लॉरिडा के सेन्ट एन्ड्र्यू चैपल सैनफोर्ड के संस्थापक पास्टर, रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के पहले अध्यक्ष, और टेबलटॉक पत्रिका के कार्यकारी संपादक थे। उनका रेडियो कार्यक्रम, *रिन्यूइंग योर माइंड*, अभी भी संसार भर के सैकड़ों रेडियो स्टेशनों पर प्रतिदिन प्रसारित किया जाता और ऑनलाइन भी सुना जा सकता है। वे एक सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *द होलिनेस ऑफ गॉड*, *चोज़ेन बाय गॉड*, और *एवरिवन्ज़ अ थियोलोजियन* सम्मिलित हैं। उन्हें संसार भर में पवित्रशास्त्र की अचूकता की सुस्पष्ट रक्षा तथा परमेश्वर के लोगों के लिए उसके वचन पर दृढ़ विश्वास के साथ खड़े होने की आवश्यकता के लिए पहचाना गया था।



लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ एक अन्तरराष्ट्रीय मसीही शिष्यता संस्था है जिसको डॉ. आर.सी. स्प्रोल ने 1971 में संस्थापित किया था जिससे कि जितने अधिक लोगों तक सम्भव हो सके उन तक परमेश्वर की पवित्रता को उसकी पूर्णता में उद्घोषित करें, शिक्षा दें और रक्षा करें। लिग्निएर लाइब्रेरी की मोहर सम्पूर्ण विश्व तथा कई भाषाओं में विश्वसनीयता का चिह्न बन गयी है।

महान आदेश द्वारा प्रेरित होकर, लिग्निएर, शिष्यता के संसाधन को छपे हुए तथा डिजिटल माध्यम से बाँटता है। विश्वसनीय पुस्तक, लेख और विडियो शिक्षा श्रृंखला चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित या रिकॉर्ड किए जा रहे हैं। हमारी अभिलाषा है यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया का समर्थन करें मसीहियों की यह जानने में सहायता करने के द्वारा कि वे क्या विश्वास करते हैं, वे क्यों विश्वास करते हैं, उन्हें उसके अनुसार कैसे जीना चाहिए, और उसे कैसे बाँटना चाहिए।

क्या प्रार्थना में सामर्थ्य है?

जब एक मसीही प्रार्थना करता है, तो क्या इससे कोई फर्क पड़ता है? क्या यह कुछ बदलता है? यद्यपि हमारी प्रार्थनाएँ परमेश्वर के मन को नहीं बदलती हैं, परन्तु वह अपनी इच्छा को पूरी करने के लिए प्रार्थना को एक साधन के रूप में निर्धारित करता है। हम भरोसा रख सकते हैं कि प्रार्थना बातों को बदलती है—जिसमें हमारा अपना हृदय भी सम्मिलित है।

इस पुस्तिका में, डॉ. आर.सी. स्प्रोल तर्क देते हैं कि प्रार्थना का मसीही जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है और यह आनन्द और आशा के साथ परमेश्वर की उपस्थिति में आने के लिए हमारा आवाहन करती है। डॉ. स्प्रोल व्यावहारिक ज्ञान को बाँटते हैं और प्रार्थना के अभिप्राय, नमूने, अभ्यास, निषेधाज्ञाएँ और सामर्थ्य को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

डॉ. आर.सी. स्प्रोल द्वारा लिखी गई यह महत्वपूर्ण प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला, मसीहियों और विचारशील जिज्ञासुओं द्वारा प्रायः पूछे जाने वाले महत्वपूर्ण प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर प्रस्तुत करती है।

डॉ. आर.सी. स्प्रोल लिग्रिएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक थे, सैनफोर्ड, फ्लोरिडा में सेंट एंड्रयूज़ चैपल के संस्थापक पास्टर, और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष थे। वे एक सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *द होलीनेस ऑफ गॉड* भी सम्मिलित है।



लिग्रिएर
लाइब्रेरी



for the truth.
www.forthetruth.in